Chapter 5

पंचम अध्याय

वर्मा जी के उपन्यासों में चरित्र-सृष्टि

एवं

उनके उपन्यासों के कुछ प्रमुख पात्रों का चरित्र- विवेचन

उपन्यास में सर्वाधिक महत्व घटना का है या चरित्र अथवा पात्र का- यह एक विवादास्पद प्रश्न है किन्तु इतना तो निस्संकोच कहा जा सकता है कि जिस प्रकार वस्तु जगत अपने चित्र-विचित्र मनुष्यों के बीच सांसें भरता है उसी प्रकार उपन्यास-जगत् के सृजन के पीछे मानव के सरल-विचित्र, रोचक-अरोचक एवं अच्छे बुरे कार्यों का महत्वपूर्ण हाथ होता है। आज उपन्यास अपने विकासेतिहास में क्रमशः घटना से चरित्र की ओर बढ़ता चला आ रहा है।यही चरित्र के उपन्यास के मूलाधार हैं, आज जब कथा-विहीन उपन्यास लिखे जा रहे हैं तब तो मानव-चरित्र की गुह्यतम वृत्तियाँ ही उपन्यास का केन्द्र बिन्दु बनती हैं किन्तु जब उपन्यास में घटना-बहुलता का युग था, तब भी पात्रों के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता था।उपन्यास की कल्पना में चरित्र की अनिवार्यता निहित है। इस प्रकार उपन्यास में चरित्र-चित्रण की महत्वपूर्ण भूमिका निर्विवाद स्वीकार की जाती है। ई० एम० फोर्स्टर का कथन है - "Human beings have their great chance in the novel. They say to the novelists 'Recreate us if you like, but we must come in."[1]

उपन्यास में पात्रों के रूप-रंग, वेशभूषा, रहन-सहन, क्रियाकलाप, आचार-विचार एवं विचाराभिव्यक्ति के व्यक्तिगत ढंग को कुछ इस प्रकार चित्रित किया जाता है कि उपन्यास के अमूर्त पात्र अपनी अलग पहचान बना लेते हैं, यदि इस कार्य को उपन्यासकार सफलता पूर्वक कर सका तो उसके पात्र अमर हो जाते हैं भले ही उनका चित्रण मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर किया जाय अथवा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष शैलियों के द्वारा किया जाय।

पात्रों का चरित्र-विवेचन किन-किन रीतियों से हो सकता है इस सम्बंध में विद्वानों में अधिक विवाद नहीं रहा है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार-' पात्रों का चरित्र-चित्रण तीन प्रकार से हो सकता है - 1- पात्रों के कार्यों द्वारा, 2- उनकी बातचीत के द्वारातथा 3- लेखक के कथन और व्याख्या के द्वारा। पहले दो को नाटकीय या अप्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण कहते हैं और तीसरे को विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण।'[2] हिन्दी के कई शीर्षस्थ विद्वानों ने इन्हीं शैलियों को मान्यता दी है।[3] नाटकीय शैली में उपन्यासकार अपनी ओर से मौन रहता है। पात्र स्वयं ही विभिन्न परिस्थितियों एवं घटनाओं के आवर्त में फँसकर अपनी चारित्रिक विशेषताओं अथवा दुर्बलताओं को प्रकट कर देते हैं या अन्य पात्रों

1- 'Aspects of the novel'-E.M.Phorster,Page-169.

2- हिन्दी साहित्य कोश- पृष्ठ-447

3- देखिए - 'साहित्यालोचन' डॉ० श्यामसुन्दरदास-पृ० 165,'काव्यशास्त्र' - डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० 92 तथा 'हिन्दी उपन्यास' - शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० 448 आदि।

के पारस्परिक वार्तालाप के द्वारा उनके चरित्र की ऐसी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं जो उपन्यासकार के विश्लेषण से भी नहीं खुल पातीं। विश्लेषणात्मक शैली में उपन्यासकार की स्थिति सर्वज्ञ की भाँति होती है। वह पात्रों के मनोवेगों, विचारों एवं प्रकृति के विषय में जैसा देखता है, उसका तटस्थ रूप में विश्लेषण करता चलता है। कभी-कभी उपन्यासकार तटस्थता को छोड़कर स्वयं अपना निर्णय भी दे बैठता है।

उपर्युक्त शैलियों में अमुक अधिक उपयुक्त एवं आधुनिक है अथवा एक शैली सर्वथा दूसरी से निरपेक्ष रूप में आती है, यह सोचना भ्रमपूर्ण एवं निरर्थक है क्योंकि उपन्यासकार किसी एक शैली के लिए प्रतिबद्ध नहीं होता। एक सफल उपन्यासकार अवसरानुकूल दोनों शैलियों का प्रयोग करता है। उसका प्रमुख उद्देश्य अपने पात्रों को अधिक स्वाभाविकता, सजीवता एवं मौलिकता से प्रस्तुत करने का होता है। 'हिन्दी साहित्य कोश' के संपादक का भी यही विचार है कि 'नाटकीय चरित्र-चित्रण जितना ही व्यंजनापूर्ण और संक्षिप्त होता है उतना ही अधिक प्रभावशाली। परन्तु चरित्र की आन्तरिक सूक्ष्मताओं और मनोवैज्ञानिक रहस्यों को इस शैली में उतने स्पष्ट और असंदिग्ध रूप में उपस्थित नहीं किया जा सकता जितना विश्लेषणात्मक शैली में सम्भव है। उपन्यास के चरित्र-चित्रण में अभिनयात्मक तथा विश्लेषणात्मक शैलियों को मिलाकर चरित्र-चित्रण अधिक विशद रूप में किया जा सकता है। ---- सुविधानुसार उपन्यासकार नाटकीयता और विश्लेषण का समुचित समन्वय करके मानवीय मनोवेग, भावावेश, विचार, भावना, उद्देश्य, प्रयोजन आदि का सूक्ष्म से सूक्ष्म आकलन कर सकता है।'[1] आजकल इन दोनों शैलियों के सम्मिलित रूप को केन्द्र में रखकर उपन्यासों में चरित्र-चित्रण के विविध नवीन प्रयोग किये जा रहे हैं, इनका अत्यंत सम्यक् एवं विशद विवेचन डॉ० रणवीर रांग्रा ने अपने चरित्र-चित्रण विषयक शोध-प्रबन्ध में किया है, इसी विवेचन को आधार मानकर हम वर्मा जी के उपन्यासों में चरित्र-सृष्टि का परीक्षण करेंगे। इसके पूर्व पात्रों के प्रकारों के विषय में चर्चा कर लेना भी अनिवार्य प्रतीत होता है।

वास्तविक जीवन में जिस प्रकार दो व्यक्ति एक जैसे नहीं मिलते, एक जैसा रूप-रंग होने पर भी उनकी कोई न कोई चारित्रिक विशिष्टता उन्हें एक दूसरे से पृथक कर देती है, उसी प्रकार औपन्यासिक कृतियों के पात्र भी भिन्न-भिन्न रूप धारण करके पाठक के समक्ष उपस्थित होते हैं। कभी कोई पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हुआ, उस वर्ग विशेष की समस्त

1- हिन्दी साहित्य कोश- पृ० 448

विशेषताओं से अनुशासित होकर प्रकट होता है तो कभी कोई पात्र अपनी मौलिक प्रवृत्तियों से पृथक् व्यक्तित्व प्रस्फुटित करता है। इस दृष्टि से पात्रों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1- वर्ग प्रतिनिधि अथवा 'टाइप' पात्र

2- निजी व्यक्तित्व से समन्वित वैयक्तिक पात्र

वर्ग प्रतिनिधि पात्रों की सामान्यता एवं वैयक्तिक पात्रों की विलक्षणता-दोनों के अतिरेक से पात्रों में अस्वाभाविकता एवं निर्जीवता आने का भय उपस्थित हो जाता है क्योंकि एक वर्ग विशेष के पात्र में भी वैयक्तिक गुण अनिवार्य रूप से विद्यमान रहते हैं जबकि एक व्यक्ति अपने वर्ग, समाज एवं देश के विशिष्ट परिवेश से प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सकता, साथ ही आनुवंशिक परम्परा उस पर अपना कुछ न कुछ चिन्ह अवश्य छोड़ती ही है। इस दृष्टि से पात्रों का चरित्र-चित्रण तभी सफल हो सकता है जब उनमें सामान्य एवं विशेष गुणों का समुचित समन्वय हो।

पाश्चात्य विद्वान फोर्स्टर ने पात्रों को दो वर्गों में बाँटा है -

(1) समतलीय (Flat)

(2) गोलीय (Round)[1]

जब कोई पात्र एक निश्चित विचारधारा का प्रतिपादन करने के लिए कथा में एक विशेष रूप धारण करके आता है और अंत तक वैसा ही बना रहता है तो उसे समतलीय पात्र कहा जाता है। इसके विपरीत जब कोई पात्र परिस्थितियों एवं भावनाओं के आलोड़न-विलोड़न में बहता हुआ उत्थान व पतन तथा कभी पतन व उत्थान की ओर अग्रसर होता जाता है, तब उसे गोलीय या गतिशील पात्र कहा जाता है।

यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है कि उपन्यास में गोलीय या गतिशील पात्र ही अधिक प्रभावशाली एवं विश्वसनीय होते हैं क्योंकि उनमें जीवन की विविधता एवं उतार-चढ़ाव अपने सहज सरल एवं वास्तविक रूप में मिलती है, इसके विपरीत समतलीय पात्र केवल उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली बनकर रह जाते हैं और बड़ी सरलता से पहचाने जाने पर भी पाठक पर अपना कोई विशेष प्रभाव नहीं डाल पाते। अतः यह आवश्यक है कि उपन्यासकार अपने उपन्यासों में समतलीय पात्रों (जिन्हें फोर्स्टर महोदय ने 'टाइप्स' भी कहा है) का कम से कम उपयोग करे। उसके कृतित्व की महत्ता गतिशील पात्रों में ही निहित

---

1. Asp ects of the novel -E.M.Forster, Page-65

होती है -"गतिशील चरित्रों की सृष्टि ही कथा साहित्य की महत्ता की कसौटी है। एक ही पात्र के स्वभाव तथा उसके आधार पर किये गये कार्यों में मनोविज्ञानसम्मत परिवर्तन तथा कभी-कभी आश्चर्यजनक विरोध का चित्रण करके कथासाहित्य में जिस सौन्दर्य की सृष्टि की जा सकती है वह साहित्य के अन्य रूपों के लिए ईर्ष्या की बात हो सकती है।"[1]

वर्मा जी के उपन्यासों में चरित्र सृष्टि

उपन्यास जगत में वर्मा जी का पदार्पण उस समय हुआ जब उपन्यास संधिस्थल पर खड़ा था, विशेषरूप से उपन्यास में मनोविज्ञान संयुक्त चरित्र-चित्रण के महत्व को महसूस किया जाने लगा था। प्रेमचन्द जी से पूर्व तो काल्पनिक कलाबाजी का ही महत्व था और चरित्र प्राय: असाधारण(अतिमानव या अतिदानव) रूप में प्रस्तुत किये जाते थे। प्रेमचन्द जी ने उपन्यासों में जनसामान्य के बीच से उठाकर पात्रों को प्रतिष्ठित किया - उसमें मजदूर, किसान, जमींदार, नौकरपेशा सभी तरह के लोग अपने स्वाभाविक रूप में स्थान पाने लगे किन्तु प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में पात्रों के बाह्य रूपाकार, परिस्थिति एवं संघर्ष के अंकन की प्रवृत्ति मुख्यतया परिलक्षित होती है, पात्रों के मन की आवाज भी कभी-कभी पाठकों तक पहुँचती है किन्तु इसके पश्चात् जैनेन्द्र, अज्ञेय एवं इलाचन्द जोशी व के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के लेखन से उपन्यास - साहित्य में विशेष परिवर्तन दृष्टिगत होता है। वर्मा जी इन दोनों के मध्य प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। उनके उपन्यासों में जहाँ प्रेमचन्दयुगीन विशेषताएँ मिलती हैं वहीं मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की भाँति कहीं-कहीं चरित्र-विश्लेषण की प्रवृत्ति भी मिल जाती है। इसी प्रकार उनके उपन्यासों में एक ओर 'टाइप' पात्र अपनी अमिट छाप पाठक के मन पर छोड़ जाते हैं तो दूसरी ओर कुछ व्यक्तिवादी पात्र अपने अन्तर्द्वन्द्व एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से स्वतंत्र रूपेण विकसित होते देखे जा सकते हैं। शिल्प-परिवर्तन के विकासेतिहास की चर्चा करते हुए डा० सत्यपाल चुघ ने लिखा है -"व्यक्ति के अन्तरंग चित्रण- मानस द्वन्द्वों के पहले की अपेक्षा अधिक अंकन तथा मुखांकित भावों के अध्ययन की दृष्टि से उसके बाद (जैनेन्द्र के 'परख' उपन्यास) भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा' (1934) का स्थान है।"[2] तथा 'प्रेमचन्द-युग की सीमा में लिखे चित्रलेखा से ही मुखांकित भावों के अध्ययन का विशेष प्राचुर्य प्रारम्भ हो जाता है। यह मनोविज्ञान के प्रभाव-वार्धक्य का सूचक है।"[3]कहने का तात्पर्य यही है कि

1- हिन्दी साहित्य कोश- पृ० 448

2- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि- डा० सत्यपाल चुघ, पृ० 75

3- ,, ,, पृ० 99

वर्मा जी के उपन्यासों में पात्रों के चरित्र-चित्रण में अन्तर्वाह्य दोनों प्रेरणाओं का समन्वित-रूप देखने को मिलता है, अत: उन्होंने चरित्र-चित्रण की अद्य: प्रचलित लगभग सभी प्रणालियों का उपयोग अपने उपन्यासों में किया है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि डॉ० रणवीर रांग्रा ने अपने शोध-प्रबंध में चरित्र-चित्रण की विविध प्रणालियों का विवेचन किया है, उसी को दृष्टि में रखते हुए हम वर्मा जी के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की विवेचना करेंगे -

पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्र-चित्रण

वास्तविक जगत् में ऐसे व्यक्ति बहुधा कम ही मिलते हैं जो 'यथा नाम तथा गुण' की कहावत चरितार्थ कर सकें किन्तु उपन्यास जगत में अनेक ऐसे पात्र मिल सकते हैं जो अपने नाम की सार्थकता सिद्ध कर दें। उपन्यासकार अपनी कृति का सृष्टा होने के कारण अपने चरित्रों के जीवन-मोड़ों से भली-भाँति परिचित होता है इसलिए उनका नामकरण करते समय जाने-अनजाने वह उनकी चारित्रिक -विशिष्टताओं का उद्घाटन कर देता है। चरित्र-चित्रण का यह सबसे सरलतम रूप है - " The simplest form of characterization is naming,Each application is a kind of vivifying,animating and individuating."[1] वर्मा जी के उपन्यासों में भी अनेक ऐसे पात्र दृष्टिगत होते हैं जिनके चरित्र की प्रमुख विशिष्टताओं को उनके ~~बक~~ नाम द्वारा प्रकट कर दिया गया है। कहीं पात्रों के गुणों के अनुरूप नामकरण करके उपन्यासकार ने उनके चरित्र को अभिव्यंजित किया है तो कहीं पात्रों की चारित्रिक कमजोरियों एवं विचित्रताओं पर छींटाकशी करने के लिए उन्हें व्यंग्यात्मक नाम दिए हैं और कभी- कभी किसी विशेष पूर्वाग्रह को न रखते हुए उन्होंने स्वाभाविक रूप से पात्रों का नामकरण स्थान परिवेश एवं जाति के आधार पर ही कर दिया है।

(क) पात्र के गुणानुरूप नाम : वर्मा जी के उपन्यासों में कुछ ऐसे पात्र मिल जाते हैं जिनका उनके नाम से अटूट सम्बंध होता है। किन्तु पात्रों के गुण के अनुरूप नाम रखने की प्रवृत्ति वर्मा जी के प्रारम्भिक उपन्यासों में ही अधिक मिलती है, परवर्ती उपन्यासों में दो -चार नाम ही इस प्रकार के दिखते हैं। 'तीन वर्ष' का अजित अपने अंतिम दर्शन तक अपराजेय ही रहता है। उसके सम्पर्क में आनेवाले सभी व्यक्तियों को उससे किसी न किसी रूप में पराजित

---

1. 'The Theory of Literature'-Welleck-Page-226-27

होना पड़ता है।[1] इसी प्रकार 'तीन वर्ष' का विनोद, 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' की रानी शशिप्रभा तथा दीवाना जी अपने नाम को सार्थक करनेवाले पात्र हैं।[2] इनके अतिरिक्त 'भूले बिसरे चित्र' के बरजोरसिंह, रिपुदमनसिंह, 'थके पाँव' की सुशीला, 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' के जबरसिंह कुछ ऐसे चरित्र हैं जिनके नाम का उनके चारित्रिक गुणों से घनिष्ठ सम्बंध है। बरजोरसिंह अपने जीवन में किसी से दबता नहीं। उसका प्रत्येक वाक्य और कार्य उसके प्रबल, उद्दण्ड, अहम्मन्यता एवं अकड़ से भरे व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है। वह, प्रभुदयाल से ज़रा भी दबता नहीं, यद्यपि उसने प्रभुदयाल से कर्ज लिया है। बल्कि हमेशा 'बनिया बक्काल' कहकर प्रभुदयाल का उपहास करता है।[3] इतना ही नहीं, जब ज्वालाप्रसाद और गजराजसिंह उसे प्रभुदयाल से माफी माँगने के लिए कहते हैं तो वह बड़े ही उद्धत स्वर में उन्हें उत्तर देता है - "माफी माँगे हम ? उस बनिये से ? क्यों नायब साहब, आपने यह बात सुझाई है ?" और बरजोरसिंह ने एक ठंडी साँस भरी, "समय बदल गया है नायब साहब, नहीं तो इस प्रभुदयाल को रातों-रात लुटवा लेते।" और बात को बदलते हुए बरजोरसिंह ने कहा, "खैर छोड़िए भी नायब साहब, आप और जीजा व्यर्थ ही इस मामले से चिन्तित हो रहे हैं। यह तो हम लोगों का आपसी मामला है, और आपस में मैं प्रभुदयाल से इस मामले को सुलझा लूँगा।"[4] और बरजोरसिंह प्रभुदयाल की हत्या करके इस मामले को सुलझाता है और अंत में स्वयं आत्महत्या कर लेता है। रिपुदमनसिंह अपनी पत्नी के प्रेमी के रूप में अपने शत्रु शिवप्रताप का दमन करनेवाला है अर्थात् उसे मौत के घाट ही उतार देता है,[5] किन्तु इसके विपरीत मित्रों और आत्मीयों से उसका व्यवहार अत्यंत शिष्टाचारपूर्ण एवं मधुर रहता है। इसी उपन्यास में नवल और विद्या स्वतंत्रता-संग्राम के समय नव्य चेतना, नवीन युग एवं नारी-शिक्षा व नारी-जागरण के प्रतीक बनकर आए हैं। 'थके पाँव' की सुशीला के सम्बंध में उसके पिता कहते हैं - "ऐसी सुशील लड़की आपको ढूँढ़े न मिलेगी।"[6] और वास्तव में सुशीला अपने शिष्ट एवं शालीनतापूर्ण व्यवहार से सबको प्रसन्न कर देती है। इसी प्रकार 'सीधी सच्ची बातें' की सुषमा और 'प्रश्न और मरीचिका' की रूपा शर्मा अपने नाम के अनुरूप असीम सुन्दरता

1- हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास-डॉ० रणवीर रांग्रा पृ० 255
2- ,, ,, पृ० 255-56
3- भूले बिसरे चित्र- पृ० 36,45-46
4- ,, पृ० 46
5- ,, पृ० 304
6- थके पाँव पृ० 62

से विभूषित है - 'सुषमा देखने में काफी सुन्दर थी, गहरा मेकअप किये हुए । इकहरे बदन की और लम्बी -सी युवती, आंखें बड़ी-बड़ी । ------- हरेक आदमी सुषमा की ओर आकृष्ट हो जाता था ।'[1] और 'असीम सुन्दरता मिली थी रूपा को ।'[2] किन्तु अपने नाम की यथार्थता को सर्वाधिक चरितार्थ करने वाला चरित्र है 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' के जबरसिंह का । एक अपनी पत्नी को छोड़कर वह सब पर अपनी जोर-जबर्दस्ती चलाता रहता है । जब वह केवल चौदह साल का बालक था तभी उसकी 'जबरई' का उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिल जाता है । रमेसुर साहु से रुपया छीन लिए जाने पर जब उसके पिता केहरसिंह उससे जबाब -तलब करते हैं और मारते हैं तो वह बड़ी दृढ़ता से उन्हें उत्तर देता जाता है, वह मार खाते-खाते बहोश हो जाता है किन्तु अपनी बात पर अटल रहता है ।[3] इसी प्रकार वह चिरंजीलाल चौरसिया[4], शिया सुन्नी-डेलीगेशन के सदस्य,[5] व्यापारी डेलीगेशन[6], त्यागमूर्ति फम्मनलाल सत्याग्रही[7], और यहाँ तक कि राधेश्याम[8], जिससे उसे काफी लम्बी घूस मिलती रहती है, सभी पर अपनी जबदरस्ती के कारण रौब जमाए रहता है।

इस प्रकार के चरित्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो उपन्यास की रूपरेखा बनाते समय इन पात्रों का एक अत्यंत-स्पष्ट चित्र उपन्यासकार की आँखों के समक्ष रहा होगा और उसी के आधार पर उसने इन चरित्रों का नामकरण किया होगा किन्तु जैसा कि हम पहले कह चुके हैं वर्मा जी के उपन्यासों में पात्रों की संख्या देखते हुए ऐसे पात्र प्राय: अत्यल्प मात्रा में मिलते हैं ।

(ख) व्यंग्यात्मक नाम : वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में कुछ अजीबोगरीब व्यक्तियों की चारित्रिक दुर्बलताओं एवं विचित्रताओं पर व्यंग्य करने के लिए व्यंग्यात्मक नामों का प्रयोग किया है । वर्मा जी ने मित्र-गोष्ठियों, डिनर अथवा टी-पार्टियों, कवि-गोष्ठियों आदि में एकत्र होनेवाले विविध व्यक्तियों का विस्तृत परिचय देते समय प्राय: व्यंग्यात्मक शैली का उपयोग किया है, कई बार इन विचित्र व्यक्तियों को व्यंग्यात्मक नाम देकर उपन्यासकार उनकी खिल्ली उड़ाने से नहीं चूकता । 'तीन वर्ष' के ठाकुर शेरसिंह वेश्या परमा के यहाँ

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 209

2- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 54

3- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 80-81,

4- ,, पृ० 87-88

5- ,, पृ० 172-173

6- ,, पृ० 170-171

7- सबहिं नचावत राम गोसाईं - पृ० 154

8- ,, पृ० 205

लगी महफिल में पहले तो बहुत बहादुरी दिखाने की चेष्टा करते हैं किन्तु अंतत: उनका व्यवहार एकदम गीदड़ जैसा प्रतीत होता है।[1] `टेढ़े मेढ़े रास्ते` के विलासी जी ने निहायत काला और भद्दा होते हुए भी अपना उपनाम `विलासी` रखा था क्योंकि वे प्राय: स्त्रियों की ट्यूशन करते थे और उनसे अपनी विलासिता की चर्चा भी करते रहते थे।[2] डॉ० रांग्रा ने लिखा है कि `नाटे कद के पतले दुबले नरकंकाल- से आलोचक महाशय का नाम रखा गया है `परम सुख`[3] किन्तु हमारे मत से परमसुख चौबे का नाम व्यंग्यात्मक इसलिए नहीं है कि वह `दुबले पतले नरकंकाल हैं कि वह खाने के लिए महादुखी और लालचियों-सा व्यवहार करते हैं[4] इसी बात पर देवीप्रसाद जी उनकी तीव्र भर्त्सना भी करते हैं - ` मैं देखता रहा हूँ कि आपने बारह तश्तरियों की जगह चौबीस तश्तरियाँ साफ की हैं। आप ऐसे छोटे-से दुबले आदमी का इतना अधिक खा लेना मुझे आश्चर्य में डाल देता है, क्योंकि मेरा पेट तो एक हिस्से से ही भर गया। मैं समझता हूँ कि आप असत्त करते हैं, इसी वजह से आपकी तन्दुरुस्ती इतनी खराब है। और साथ में आपकी आदत भी बिगड़ती है क्योंकि मिठाई न मिलने पर आप अमीरों को गालियाँ बकने लगते हैं।`[5] इसी प्रकार चालीस वर्षीया, साँवले रंग और बड़े-बड़े दाँत वाली एकहरे बदन की तंदुरुस्त महिला, जो अपने सफेद बालों पर खिजाब लगाकर युवा बने रहने का यत्न करती थीं- इनका नाम उपन्यासकार ने मृणालिनी रखकर उनके हास्यास्पद उपक्रम का उपहास उड़ाया है।[6] `अपने खिलौने` के रंगीन तबियत के साहित्यकार स्वच्छंद जी एवं मधुकर जी के नाम भी व्यंग्यात्मक ही है क्योंकि मीना और अन्नपूर्णा जैसे सुन्दरी स्त्रियों को देखकर `स्वच्छंद जी के मुख पर चमक आ`[7] जाती है तथा मधुकर जी स्वच्छंद जी की बात न सुनकर एकटक मीना को देखने में मशगूल हो जाते हैं।[8] इन साहित्यकारों के उपयुक्त नाम देकर वर्मा जी ने कतिपय साहित्यकारों की रसिक वृत्ति की ओर

1- तीन वर्ष- पृ० 161 से 163 तक।
2- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 220
3- हिन्दी उपन्यास में चरित्र -चित्रण का विकास-पृ० 256
4- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 237,232
5- ,, पृ० 238
6- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 221
7- अपने खिलौने- पृ० 146
8- ,, पृ० 148

कटाक्ष किया है। इसी प्रकार 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में 'एक निहायत चिमरखी- से दिखनेवाले'[1] नवयुवक कवि का नाम वर्मा जी ने 'फंफावत' रखा है, यह अपने को इतना पराक्रमी समझते हैं कि कहते हैं - "तुमने समझ क्या रक्खा है मुझे ? मैं हूँ फंफावत -समुद्र सोख सकता हूँ, समुद्र। यह दामोदरदास क्या कविता लिखेगा ?" इन्हीं फंफावत जी को रामलोचन हाथ पकड़कर, मेज से उतारकर ऐसा झुलाता है मानो फेंक ही देगा।[2] इसी उपन्यास में मंत्री जबरसिंह का भाई हिम्मतसिंह अपने रूप-आकार में 'काफी खूँख्वार आदमी' दिखते हुए भी अत्यंत दब्बू और डरपोक किस्म का आदमी है। वह जबरसिंह से तो प्राय: डाँट खाता ही है, कर कोई उसे चौकसिया लेता है। राधेश्याम उसकी बात को गदेपन की बात कहकर डाँट बताता है तो उसे क्रोध तो बहुत आता है किन्तु बाद में वह ठण्डा पड़ जाता है, इस पर रामलोचन उसे उल्टे डाँट बताता है -"इतने लहीम- शहीम आदमी होकर कीड़े-मकोड़ों की जिन्दगी बिताने में तुम्हें शर्म नहीं आती ? धिक्कार है तुम पर।"[3] और भूमि-अवाप्ति की घटना के द्वारा तो उपन्यासकार ने हिम्मतसिंह की 'हिम्मत' का खूब ही मज़ाक उड़ाया है।[4] मुख्यमंत्री झम्मनलाल महेश्वरी का नाम त्यागमूर्ति झम्मनलाल सत्याग्रही क्यों पड़ा - इस पर उपन्यासकार की व्यंग्यात्मक व्याख्या स्वयं में अत्यंत रोचक है -"सन् 1919 में जब महात्मा गाँधी का उदय भारत के राजनीतिक क्षितिज पर हुआ, तब झम्मनलाल महेश्वरी ने अपने पिता के कारबार से हाथ खींचकर अपना जीवन महात्मा गाँधी को अर्पित कर दिया, महात्मा गाँधी के साथ अफ्रीका में सत्याग्रह की परम्परा थी, लिहाज़ा झम्मनलाल ने अपने नाम के आगे से महेश्वरी शब्द हटाकर सत्याग्रही शब्द जोड़ लिया। अब वह झम्मनलाल सत्याग्रही बन गये। ---- महात्मा गाँधी द्वारा निर्धारित ब्रह्मचर्य-धर्म निभाने के लिए इन्होंने अपनी पत्नी तक को त्याग दिया था और इस महान् त्याग से प्रभावित होकर इनके मित्रों एवं अनुयाइयों ने उन्हें त्यागमूर्ति की उपाधि से विभूषित कर दिया था। अब इनका नाम हो गया त्यागमूर्ति झम्मनलाल सत्याग्रही।[5] मुख्यमंत्री के इस लम्बे -चौड़े नाम का रहस्य बतलाकर वर्मा जी ने नेता -वर्ग की ढोंग और प्रदर्शन की प्रवृत्ति की ओर व्यंग्य किया है।

(ग) विकासारम्भ के द्योतक नाम :- वर्मा जी के उपन्यासों में कुछ पात्रों का नामकरण उनके उपन्यास में प्रवेश के समय की किसी प्रमुख चारित्रिक विशिष्टता के आधार पर भी किया गया है;

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 165

2- ,, पृ० 169

3- ,, पृ० 237

4- ,, पृ० 195 से 198 तक

5- ,, पृ० 151-152

किन्तु ऐसे नामों को `गुणानुरूप नाम` के अन्तर्गत इसलिए नहीं रखा जा सकता है क्योंकि ये नाम पात्रों के सम्पूर्ण औपन्यासिक जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं करते । उपन्यास में आगत परिस्थितियों एवं घटनाओं के अनुसार उनके चरित्र में परिवर्तन आने लगता है और वे अपने नाम के विपरीत कार्य करते देखे जाते हैं ।

`तीन वर्ष` की लीला का परिचय प्रभा `संसार में निराश प्रेमियों की संख्या बढ़ाने`[1] वाली के रूप में कराती है और ऐसा प्रतीत है मानो उसकी इसी रमण-वृत्ति की ओर इंगित करने के लिए उपन्यासकार ने उसे लीला नाम दिया है किन्तु यही लीला जैसे-जैसे निश्छल एवं कुछ निर्लिप्त से अजित के सम्पर्क में आती है, वह बड़ी एकनिष्ठता एवं गम्भीरता से अजित को अपना प्रेम समर्पित कर देती है । प्रेम को एक क्रीड़ा के रूप में लेने की उसकी प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है । `टेढ़े मेढ़े रास्ते` के फगढ्ढू मिश्र बड़े तेज तर्रार एवं स्वाभिमानी व्यक्ति हैं और उनका बात-बात में सबसे उलझ पड़ना उनके नाम की सार्थकता सिद्ध कर देता है[2] किन्तु उनके अन्तस् में प्रेम की अजस्र धारा निरन्तर प्रवहमान थी, उसी के कारण वह कालान्तर में अपने विरोधी परमानन्द सुकुल एवं मन्नू दूबे को मुक्त करने के प्रार्थना करते हैं[3] और गाँव के प्रजाजन एवं रामनाथ तिवारी के बीच उठे संघर्ष में अपने प्राण त्याग देते हैं । `चित्रलेखा` का कुमारगिरि जो उपन्यास के प्रारम्भ में `कौमार्य` में `गिरि` के समान उन्नत और अडिग था और उसका दावा था कि उसने संसार की समस्त वासनाओं पर विजय पा ली है,[4] अंत में वासना के गर्त में गिरकर पतित हो जाता है[5]। इसके विपरीत बीजगुप्त, जो प्रारम्भ में बीज-प्रकृति का उपासक था, भोग-विलास, आमोद-प्रमोद उसके जीवन का साधन तथा लक्ष्य था, चित्रलेखा से बिछुड़कर संसार से विरक्त हो जाता है । यहाँ तक कि अपनी समस्त सम्पत्ति तथा पदवी श्वेतांक को दान देकर देशाटन के लिए निकल पड़ता है और एक भोगी से उसका रूपान्तर एक योगी में हो जाता है । `भूले बिसरे चित्र` की उषा प्रारम्भ में भोर की प्रथम किरण की भाँति नवल के जीवन को प्रकाश और आनंद से भर देने वाली युवती के रूप में चित्रित की गयी है । जैसे उषा-वेला में असंख्य पुष्प अपने सौन्दर्य एवं सुगंधि से

1-	तीन वर्ष-	पृ० 59
2-	टेढ़े मेढ़े रास्ते-	पृ० 124 से 126, 341-42
3-	,,	पृ० 351 एवं 352
4-	चित्रलेखा-	पृ० 7
5-	,,	पृ० 160

सबका मन हर लेते हैं उसी प्रकार उषा का मृदुल हास ऐसा प्रतीत होता है `मानो असंख्य फूल एक साथ झर पड़े हों।`[1] यही उषा उपन्यास के अंतिमांश में मध्यान्हकालीन सूर्य की भाँति अत्यंत प्रखर बन जाती है। जहाँ पहले उसका व्यवहार नवल के मन को शांति से भर देता था, वहीं बाद में उसका रूक्ष एवं कटु आचरण नवल के मन में `भावना का तूफान`[2] खड़ा कर देता है। `थके पाँव` की माधुरी `असीम ममता, त्याग और संवेदना लेकर`[3] अपने पति केशव के जीवन में आई थी और उसके हरेक संकट में सहायक बनकर उसने केशव के जीवन में माधुर्य उड़ेलने की चेष्टा की थी किन्तु कालान्तर में `जीवन के अनगिनती संघर्षों ने उसके भोलेपन को उससे छीन लिया` और वह किसी हद तक चिड़चिड़ी हो गयी`[4] इसीलिए उसे अपने पति की बातों में कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती। यंत्र की तरह वह गृहस्थी का काम करती है [5], इतना ही नहीं झुंझलाहट में वह अपनी सुशील एवं विनम्र बहू से भी झगड़ पड़ती है[6]। इस प्रकार उसका बाद का आचरण माधुरी नाम के विपरीत ही दिखता है। इसी प्रकार `प्रश्न और मरीचिका` का उदयराज उपन्यास के प्रारंभ में एक उदीयमान एवं प्रतिभाशाली नवयुवक है। उसके विषय में शिवलोचन शर्मा की धारणा है -`मिस्टर उपाध्याय! आपके लड़के में प्रतिभा है, भावी भारत के निर्माण में इसका महत्वपूर्ण योगदान होगा।` और उपन्यास के अधिकांश में उसके ऊपर उठने, उन्नति करने के गुण का प्राधान्य रहता है। वह स्वयं तो विकसित होता ही है, दूसरों की सहायता करके उन्हें सुख पहुँचाता है किन्तु देश और समाज की विषम परिस्थितियाँ उसमें धीरे-धीरे एक दुश्चिंता और उदासी भरना प्रारम्भ कर देती हैं और वह उपन्यास के अंत में एक अस्तोन्मुख नक्षत्र की भाँति थका एवं ढला हुआ दिखता है। प्रचुर प्रश्नों के उत्तर में उसके समक्ष सीमाहीन और अनन्त भटकाव की स्थिति उपस्थित हो उठती है और वह ह्विस्की के नशे में मानो अपने को अस्त कर देना चाहता है।[7]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी के उपन्यासों में कुछ ऐसे पात्र हैं जिनका नामकरण उनके उपन्यास-प्रवेश की प्रमुख `इमेज` के आधार पर किया गया है, किन्तु कालान्तर में वह

1- भूले बिसरे चित्र- पृ0 561

2- ,, पृ0 708

3- थके पाँव- पृ0 48

4- ,, पृ0 18

5- ,, पृ0 55

6- ,, पृ0 87

7- प्रश्न और मरीचिका- पृ0 553-54

चरित्र उपन्यास की सम-विषम परिस्थितियों के अनुकूल विभिन्न दिशाओं में मुड़ते जाते हैं और उनके नाम की सार्थकता अपनी पहचान समाप्त कर देती है। लेकिन इस प्रकार के नाम भी वर्माजी के उपन्यासों में बहुत अल्प मात्रा में मिलते हैं।

(घ) एक नाम के एकाधिक पात्र :- वर्मा जी के उपन्यासों में एक ही नाम के दो या दो से अधिक पात्र अत्यधिक मात्रा में मिल जाते हैं। उनमें नाम-साम्य के अतिरिक्त चरित्र-साम्य भी हो, ऐसी स्थिति प्राय: नगण्य है। कभी-कभी एक ही नाम के दो पात्रों की कोई एक दो विशेषताएँ ऐसी होती हैं जो कुछ-कुछ मिलती है किन्तु दो पृथक-पृथक पात्रों की सम्पूर्ण छवि प्राय: अपनी पृथक् ही होती है। वर्मा जी के उपन्यासों में जो दो पात्र एक ही नाम के मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं -

(1) रामप्रकाश - `अपने खिलौने` में नायिका मीना का ममेरा भाई- यह संगीत में रुचि रखने-वाला एक शिष्ट विनम्र युवक है। `टेढ़े मेढ़े रास्ते` में थानेदार रामप्रकाश(पृ० 263)

(2) नवल - `भूले बिसरे चित्र` में प्रमुख पात्र ज्वालाप्रसाद का पौत्र-उपन्यास के पाँचवें खण्ड का नायक, तथा `सामर्थ्य और सीमा` में सुमना स्टेशन का खलासी नवलसिंह (पृ० 4)

(3) जीवनराम - `वह फिर नहीं आई`- का प्रमुख पात्र, रानी श्यामला का पति तथा `थके पाँव` में माया की सहेली रानी का पिता (पृ० 103,137 से 139)

(4) बाँकेलाल - `तीन वर्ष` में विनोद का मित्र (पृ० 172 और अन्य) तथा `थके पाँव` में केशव की बहन सुधा के ससुर (पृ० 24)

(5) किशोर -`टेढ़े मेढ़े रास्ते` के प्रोफेसर किशोर(पृ० 219) तथा `आखिरी दाँव` में गीतकार किशोर-(पृ० 115-16)

(6) मिट्ठनलाल -`सामर्थ्य और सीमा` में सुमना स्टेशन के स्टेशन-मास्टर बाबू मिट्ठनलाल तथा `थके पाँव` में केशव के जाति-भाई(बिरादर) बाबू मिट्ठनलाल(पृ० 59); थके पाँव में ही लाला मिट्ठूमल-कपड़े के व्यापारी(पृ० 48)

(7) ज्ञानचन्द्र -`वह फिर नहीं आई` में कथा का प्रवक्ता तथा उपन्यास का प्रमुख पात्र तथा `रेखा` में रेखा के पिता कर्नल ज्ञानचन्द्र।

(8) नाहरसिंह -`सामर्थ्य और सीमा` के मेजर नाहरसिंह-रानी मानकुमारी के पति के चाचा तथा `सबहिं नचावत राम गोसाईं` में जबरसिंह के पितामह (पृ० 57)। ये दोनों पात्र ठाकुर (क्षत्रिय) हैं किन्तु इनके चरित्र में पर्याप्त अंतर है। मेजर नाहरसिंह सेना में भूतपूर्व मेजर होते हुए भी अत्यंत भाव-प्रवण एवं अपने में खोए- से रहनेवाले व्यक्ति हैं जबकि `सबहिं नचावत राम गोसाईं` के नाहरसिंह डकैत के रूप में उपन्यास में प्रविष्ट

होते हैं और बाद में डाके की राशि से जमीन-जायदाद खरीदकर प्रतिष्ठित व्यक्ति बन जाते हैं।

(9) बुडबर्न - 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में सेना के ब्रिगेडियर (पृ० 35) तथा इसी उपन्यास में अंग्रेज प्रिंसिपल मिस्टर वुडबर्न (पृ० 111)

(10) गंगादेवी - 'भूले बिसरे चित्र' में कांग्रेस की स्वयंसेविका गंगादेवी (पृ० 498) तथा 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में उद्योगपति राधेश्याम की पत्नी गंगादेवी (पृ० 33)

(11) रामकिशोर - 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में लाला रामकिशोर व्यापारी तथा कांग्रेस के कार्यकर्ता (पृ० 8) 'थके पाँव' में अनाज के बहुत बड़े व्यापारी लाला रामकिशोर (पृ० 141)। ये दोनों ही 'लाला' विशेषण के कारण वैश्य दिखते हैं और दोनों कानपुर के व्यापारियों के रूप में चित्रित किये गये हैं। इसके विपरीत 'सीधी सच्ची बातें' का रामकिशोरसिंह भूमिहर जाति का अत्यंत बलिष्ठ एवं प्रखर नवयुवक है (पृ० 349)

(12) हीरालाल - 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में डाक्टर हीरालाल- कांग्रेस कार्यकर्ता (पृ० 19) तथा 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में राधेश्याम कासाला हीरालाल(पृ० 34-35)

(13) गिरधारी- 'सघ सीधी सच्ची बातें' में दूध का व्यापारी गिरधारी(पृ० 75 से 77) तथा 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में मेवालाल का मुनीम गिरधारी (पृ० 24)।

(14) रामेश्वर- 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में एक साहित्यकार रामेश्वरप्रसाद (पृ० 216) तथा 'आखिरी दाँव' का नायक रामेश्वर (पृ० 3)।

(15) रघुराजसिंह - 'सामर्थ्य और सीमा' में मेजर नाहरसिंह का पुत्र रघुराजसिंह जो 'कम्यूनिस्टिक' विचारधारा का एवं स्वच्छंद प्रकृति का युवक है (पृ० 101) 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' के रघुराजसिंह जबरसिंह के मामा तथा कांग्रेस के निष्ठावान कार्यकर्ता हैं (पृ० 81-82)। दोनों में ही कफ नाम एवं जाति साम्य है किन्तु दोनों के चरित्र में पर्याप्त अंतर है।

उपर्युक्त नामों के अतिरिक्त कुछ ऐसे पात्र भी हैं जिनमें नाम के अतिरिक्त कुछ-कुछ चरित्र साम्य भी मिलता है। उन पर भी एक दृष्टि डाल ले लेना अनुचित न होगा -

रिपुदमनसिंह - 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में अजित के मित्र कुँवर रिपुदमनसिंह जाति से क्षत्रिय तथा राजपूताना की किसी रियासत के राजा के तीसरे पुत्र हैं और 'भूले बिसरे चित्र' के लाल रिपुदमनसिंह भी क्षत्रिय एवं राजा साहब विजयपुर (जिसका कुछ हिस्सा युक्त प्रान्त के बुन्देलखण्ड में तथा कुछ हिस्सा मध्य प्रान्त में पड़ता था) के छोटे भाई हैं। दोनों ही खेल के तथा शराब के शौकीन हैं। दोनों के शारीरिक सौष्ठव में भी अधिक अंतर नहीं है, दोनों के कद और रंग

में ही थोड़ा अंतर दिखता है ।[1] तीन वर्ष के रिपुदमनसिंह बहुत थोड़ी देर के लिए पाठकों आते हैं और अपने छोटे से परिचय में अपनी जातिगत विशेषताओं की ही छाप छोड़ जाते हैं, इसी प्रकार `भूले बिसरे चित्र` के रिपुदमनसिंह का चरित्र भी अपनी जातीय विशेषताओं से विभूषित हैं और वह जितनी देर उपन्यास के पृष्ठों पर रहते हैं अपने रौब-दाब युक्त व्यक्तित्व से गंगाप्रसाद (भूले बिसरे चित्र का एक प्रमुख पात्र) को प्रभावित किए रहता है ।

जैसुखलाल - जैसुखलाल `सबहिं नचावत राम गोसाईं` में एक उद्योगपति का पुत्र है जो व्यापार में ही अपने पिता की सहायता करता है (पृ० 26) । और बाद में स्वयं करोड़पति बनने की दिशा में अग्रसर दिखता है ।[2] इसी जैसुखलाल का दूसरा परिवर्द्धित रूप `प्रश्न और मरीचिका` में दिखता है । यह मिलोनर एवं करोड़पति आदमी है, इसमें बड़े-बड़े उद्योगपतियों की एक अन्य विशेषता का समावेश हुआ है - कि वह `बड़ा दिलफेंक आदमी है ।`[3] अपने पैसे के बल से वह रूप का सौदा करता रहता है ।

शिवकुमार - `आखिरी दाँव` का शिवकुमार एक युवक व्यापारी है `उसके पास धन था, धन की शक्ति थी और उस शक्ति का गर्व था`[4] और वह अपने धन के बल पर चमेली को खरीदने का सफल प्रयत्न करता है उसी प्रकार `प्रश्न और मरीचिका` का शिवकुमार गाबड़िया उपन्यास के नायक उदयराज उपाध्याय का व्यापारी मित्र है ।`अपने वैभव और ऐश्वर्य की बातें करने से वह अघाता नहीं, दुनिया में रुपया ही सब कुछ है, हरेक आदमी रुपये से बिका है ।`[5] इन्हीं रुपयों की शक्ति दिखलाकर , होटल में व्हिस्की पिलाकर और खाना खिलाकर वह कांग्रेस के एक तपस्वी योद्धा की पुत्री एवं कांग्रेस के एक वरिष्ठ नेता की पत्नी के शरीर को खरीदता है ।

चन्द्रभूषण सिंह - `भूले बिसरे चित्र` में यज्ञपुर के ताल्लुकेदार राजा चन्द्रभूषण सिंह(पृ०32) तथा `सबहिं नचावत राम गोसाईं` में रीवाँ रियासत के इलाकेदार राव चन्द्रभूषण सिंह (पृ० 108) दोनों ही क्षत्रिय एवं भूअधिपति हैं । दोनों ही मदिरा के शौकीन तथा क्षत्रिय-कुल-गौरव में विश्वास करनेवाले हैं ।

1- देखिए-`तीन वर्ष`-पृ० 28 तथा `भूले बिसरे चित्र`- पृ० 252
2- सबहिं नचावत राम गोसाईं - पृ० 40
3- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 173
4- आखिरी दाँव- पृ० 37
5- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 60

यमुना - `भूले बिसरे चित्र` में ज्वालाप्रसाद कीपत्नी यमुना तथा `सीधी सच्ची बातें` में जगतप्रकाश की मँगेतर यमुना-दोनों ही सीधी-सादी घरेलू युवतियाँ हैं। भूले बिसरे चित्र की यमुना में अपने पति की ऊँची सरकारी नौकरी का कोई दम्भ नहीं है और वह इस सीमा तक अपने पति के प्रति एकनिष्ठ है कि जैदेई के साथ उसके अवैध सम्बंधों की भी अवहेलना कर जाती है। भारतीय नारी की भाँति जीवन का अंत होने तक पति के प्रत्येक सुख-दुख में उसका पूरा सहयोग बना रहता है।`सीधी सच्ची बातें` की यमुना का विवाह जगतप्रकाश से नहीं हुआ है किन्तु वह जगतप्रकाश को देखते ही एक समर्पिता नारी की भाँति उसकी प्रत्येक सुख-सुविधा का ध्यान रखती है। उसमें जगतप्रकाश के लिए अन्य अपार प्रेम और निष्ठा है किन्तु पारिवारिक परिस्थितियों के कारण अन्यत्र विवाह कर दिये जाने पर वह भारतीय आदर्शों के अनुकूल इस विवाह का विरोध नहीं करती किन्तु विवाह के पश्चात् जगतप्रकाश से मिलने पर और उसके अनुराग को देख उसका मन व्यथित हो उठता है।इस प्रकार दोनों यमुना में कुछ-कुछ चरित्र-साम्य भी दृष्टिगत होता है।

एक नाम के एकाधिक पात्रों के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में एक ही नाम के दो या दो से अधिक पात्रों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। यहाँ यह उल्लेख करनाआवश्यक प्रतीत होता है कि प्राय: ऐसा संयोग दो-चार प्रमुख पात्रों को छोड़कर गौण पात्रों के नामकरण में ही उपस्थित हुआ है। फिर भी इनकी पुश्कल मात्रा देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। इनमें भी जिन पात्रों में नाम-साम्य के अतिरिक्त कुछ चरित्र-साम्य भी मिलता है, उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो उपन्यासकार कुछ ऐसे व्यक्तियों से इतनी तीव्रता से प्रभावित हुआ है कि वह उसके उपन्यासों में किंचित परिवर्तन के साथ बार-बार प्रवेश पाते रहते हैं। कभी-कभी तो वह नाम और रूप बदलकर आते हैं और कभी उपन्यासकार उनका नाम बदलने की आवश्यकता भी अनुभव नहीं करता।

(ङ)स्वाभाविक नामकरण - वर्मा जी के उपन्यासों में कुछ गुणानुरूप, व्यंग्यात्मक नाम भी मिलते हैं तथापि उनके उपन्यासों में प्राय: नामकरण उद्देश्यरहित है एवं पात्रों की जाति, वर्ग तथा स्तर के आधार पर स्वाभाविक रूप में किया गया है। मुंशीगीरी करनेवाले कुछ व्यक्तियों के नाम मुंशी शीतलासहाय,मुंशी रामसहाय आदि हैं जबकि क्षत्रियों का नामकरण करते समय केवल जाति द्योतक विशेषण `सिंह` ही नहीं लगा दिया गया वरन् जातिगत प्रवृति के अनुसार इन पात्रों के नाम रामप्रतापसिंह,केशरीनारायण सिंह, अम्बिकाप्रसादसिंह, पृथ्वीपालसिंह, गजराजसिंह, मलकानसिंह, जैपालसिंह आदि रखे गये हैं, जो अत्यंत स्वाभावि

प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार निम्न वर्ग के घरेलू नौकरों के नाम छिनकी, घसीटे, मीखू, कलुआ, कालसी, लौटन आदि रखे गये हैं जो उनके वर्ग के अनुकूल होने के कारण स्वाभाविक हैं। इसी प्रकार पूर्वी उत्तरप्रदेश के ब्राह्मण परिवार के सदस्यों के नाम रामउदित, रामसमुझ, रामानुज, रामसजीवन, रामसिंहासन आदि रखकर वर्मा जी ने उस प्रदेश से अपनी एकात्मीयता का परिचय दिया है। इन थोड़ेसे उदाहरणों के आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी ने पात्रों के नामकरण अधिकांशतः बिना किसी पूर्वाग्रह के उनकी जाति एवं वर्ग के अनुसार स्वाभाविक रूप से किया है।

<u>पात्रों का प्रथम परिचय</u> :- पात्रों के प्रथम परिचय के सम्बंध में ऐसा माना गया है कि "श्रेष्ठ उपन्यासकार अपने किसी पात्र को उपन्यास के रंगमंच पर तब तक नहीं लाता जब तक कि उसके करने के लिए कोई महत्वपूर्ण काम नहीं होता। परिचय भर कराने के लिए पात्रों को उपन्यास के रंगमंच पर ले आना और बाद में उन्हें तब तक के लिए 'कोल्ड स्टोरेज' में डाल देना जब तक उनकी आवश्यकता न पड़े, उनके प्रति पाठकों में उपेक्षा का भाव जगा देना है।"[1] यह कथन अत्यधिक सत्य प्रतीत होता है और इस बात में कोई संदेह नहीं कि कोई भी श्रेष्ठ उपन्यासकार केवल परिचय कराने के लिए ही चरित्रों का परिचय नहीं कराता। वर्मा जी ने भी अपने उपन्यासों में क्रमशः उन्हीं पात्रों का आगमन कराया है जो कथा के विकास में अपना समुचित योगदान करते हों, फिर भले ही वह प्रमुख पात्र हों अथवा गौण पात्र हों। उपन्यास में पात्रों के प्रवेश के पश्चात् अथवा उसके पूर्व उनका विस्तृत परिचय कराने के लिए वर्मा जी ने अनेक विधियों का उपयोग किया है, किन्तु उनके प्रथम प्रवेश के बारे में उन्होंने पर्याप्त सतर्कता बरती है। पहले वे उपन्यासों में उन्हीं पात्रों की अवतारणा ~~की~~ करवाते हैं जिनके द्वारा उपन्यास की कथा का प्रारम्भ उन्हें अभीप्सित होता है। तदुपरांत कथानक को विकसित करने के लिए अथवा नायक-नायिका के चरित्र के विभिन्न मोड़ों को प्रकाशित करने के लिए जिन पात्रों की आवश्यकता उपन्यासकार अनुभव करता है, उन्हें उपस्थित करके उनका परिचय करवा देता है। 'चित्रलेखा' में यशोधरा का प्रथम परिचय पृष्ठ 68 पर लगभग एक तिहाई उपन्यास समाप्त होने पर मिलता है और उसका प्रवेश और 2 पृष्ठ बाद होता है किन्तु उसके प्रवेश मात्र से ही कथानक में नवीन गति आ जाती है। कुमारगिरि के प्रति आकृष्ट चित्रलेखा को बीजगुप्त से मुक्त होने का एक बहाना मिल जाता

1- हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास-डॉ० रणवीर रांग्रा, पृ० 66

है, उधर चित्रलेखा की अन्यमनस्कता से विह्वल बीजगुप्त भी नवीन अन्तर्द्वन्द्व में झूलने लगता है और कुमारगिरि भी चित्रलेखा को पाने के लिए यशोधरा का अच्छा उपयोग करता है। इसी प्रकार 'तीन वर्ष' के विनोद, सरोज, 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के उमानाथ, झगड़ू मिश्र, वीणा, मनमोहन एवं विश्वम्भरदयाल तथा 'आखिरी दाँव' के सेठ शिवकुमार एवं शीतला-प्रसाद ऐसे पात्र हैं जो उपन्यास के प्रमुख पात्रों के जीवन के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने के लिए उपन्यास में देर सबेर प्रवेश करते हैं।

'भूले बिसरे चित्र' और 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में नायक नायिका की दृष्टि से वर्मा जी ने नवीन प्रयोग किया है। भूले बिसरे चित्र पाँच खण्डों में विभाजित है और उसमें एक परिवार की चार पीढ़ियों के प्रमुख व्यक्तियों को नायकत्व प्रदान किया गया है, इसलिए इन चारों व्यक्तियों के जीवन को विभिन्न व्यक्ति प्रभावित करते हैं, उनके चरित्र को नवीन दिशा प्रदान करने के लिए प्रकट होते हैं और घटना के प्रवाह में विलुप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में तीन परिवारों की तीन-तीन पीढ़ियों की कथा कही गई है, इसलिए इन परिवारों के विभिन्न प्रमुख व्यक्तियों को जीवन-रस प्रदान करने के लिए अनेक पात्रों की अवतारणा होती है और वे उपन्यास के थोड़े- से पृष्ठों पर अपना चमत्कार दिखलाकर गायब हो जाते हैं। इन पात्रों का उल्लेख भर करना भी अनावश्यक विस्तार करना ही होगा। वर्मा जी के परवर्ती उपन्यासों में से कुछ उदाहरणों पर दृष्टि डाल देना हम अवश्य समीचीन समझते हैं। 'सामर्थ्य और सीमा' में उपन्यास के दो सर्वाधिक प्रमुख पात्र रानी मानकुमारी और मेजर नाहरसिंह पृष्ठ 55 और पृष्ठ 57 पर प्रवेश पाते हैं। इनके प्रवेश के उपरान्त ही कथा को वास्तविक गति मिलती है। 'रेखा' में रेखा के जीवन को झकझोर कर रख देनेवाले और उसके चरित्र में अधिक जटिलता लानेवाले डाक्टर योगेन्द्रनाथ मिश्र का प्रथम परिचय बड़ी नाटकीय स्थिति में आधे से अधिक उपन्यास के समाप्त हो जाने पर पृष्ठ 219 पर होता है। इसके बाद भी योगेन्द्रनाथ एकाएक कोई चमत्कार नहीं दिखलाते तथापि धीरे-धीरे उनका अति सामान्य शारीरिक सौष्ठव एवं सबल व्यक्तित्व रेखा के तन, मन और प्राण पर हावी होता जाता है और अंतत: वह उनसे बिछुड़ने पर विक्षिप्तावस्था में पहुँच जाती है। इसी प्रकार 'सीधी सच्ची बातें' में यमुना, सुषमा वंशगोपाल तथा 'प्रश्न और मरीचिका' में अंजनीकुमार शर्मा, विद्यानाथ तथा मंजीत आदि कुछ ऐसे पात्र हैं जो अपने प्रथम परिचय से कथा में एक नयी जान डाल देते हैं अथवा मुख्य पात्र की चरित्रगत विशेषताओं का नवीन पृष्ठ खोल देते हैं।

यह तो पात्रों के प्रथम प्रवेश अथवा परिचय की विभिन्न अवस्थाओं की चर्चा हुई। अब, वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में प्रमुख या गौण पात्रों का परिचय किन-किन रीतियों

से करवाया है, इसकी चर्चा कर लेना भी समीचीन प्रतीत होता है।

औपचारिक परिचय - पात्रों के प्रथम परिचय के सम्बंध में मुंशी प्रेमचंद जी का विचार था कि 'किसी चरित्र की रूपरेखा करते समय हुलियानवीसी की जरूरत नहीं। दो-चार वाक्यों में मुख्य-मुख्य बातें कह देना चाहिये।'[1] इस मान्यता के विपरीत वर्मा जी ने कहीं-कहीं अपने पात्रों की हुलियानवीसी को अधिक महत्व प्रदान किया है। कुछ ऐसे पात्र जो उपन्यास के पृष्ठों पर अधिक देर नहीं टिकते, विभिन्न पार्टियों या बैठकों में जो थोड़ी देर के लिए इकट्ठा होते हैं; उनके रूपाकार, वेशभूषा आदि का परिचय कराकर वर्मा जी उनके चित्र को पूर्णतया स्पष्ट कर देना चाहते हैं। इस नख-शिख-वर्णन के पश्चात् लेखक प कभी-कभी उन्हें उपन्यास के पात्र के माध्यम से औपचारिक रूप से परिचित करवाता है और कभी वे स्वयं एक दूसरे से वार्तालाप करते-करते परिचित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त उपन्यास के सामान्य पात्रों ~~क0०विव~~ के चित्रण में औपचारिक परिचय की प्रवृत्ति प्रमुख रूप से देखी जा सकती है।

'तीन वर्ष' में अजित की वर्षगाँठ के अवसर पर आयोजित पार्टी में आमंत्रित लोगों में से एक का परिचय लेखक स्वयं इन शब्दों में करवाता है - 'सोफे पर एक सज्जन लेटे हुए थे। इनकी मूँछे घनी और ऊपर की ओर उठी हुई थी। रंग जरा साँवला था, लेकिन चेहरे की बनावट अच्छी। आँखें बड़ी-बड़ी थीं, जिनमें लाल डोरे पड़े थे। सुरमे की लीक आँखों के बाहर निकली थी। दाढ़ी इस सफाई से घुटी हुई थी कि एक भी खूँटी न दिखाई देती ~~है~~ थी। एक महीन मलमल का कुरता पहने हुए थे, जिसकी बाहें चुनी हुई थी। कुरते के
मुड़ी थीं। और चाक पर बेल लगी थी। कुरते के
नीचे जालीदार बनियाइन थी। महीन किनारे की बहुत महीन धोती पहने हुए थे। पेटेन्ट का पम्प सोफा के नीचे रखा हुआ था, एक चुनी हुई दुपल्ली टोपी मेज पर रखी थी। ये सज्जन अपनी नजर छत पर गड़ाए हुए बड़े मीठे स्वर में एक गजल का एक शेर बेर-बेर गुनगुना रहे थे।'[2] इसी प्रकार अजित के तीन अन्य मित्रों की हुलिया का विस्तृत वर्णन कर उपन्यासकार इन्हें अजित के आतिथ्य में छोड़ देता है और अजित इनका औपचारिक परिचय रमेश से करवाता है। इसी प्रकार 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में मिस्टर रामेश्वरप्रसाद के शारीरिक सौष्ठव एवं वेशभूषा का वर्णन करके उपन्यासकार उनका औपचारिक परिचय करवाने के लिए राजेन्द्र-कुमार के हाथों में छोड़ देता है।[3] आधुनिक समाज में अपरिचित व्यक्तियों का परिचय करवान अथवा करना सामाजिक शिष्टाचार के अन्तर्गत आता है, इसी रीति का लाभ उठाकर वर्मा जी

1- 'कुछ विचार' - पृ० 60

2- तीन वर्ष- पृ० 27-28

3- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 216

ने अपने उपन्यासों के अनेक पात्रों का परिचय उपन्यासों में पहले से उपस्थित पात्रों के माध्यम से करवाया है । कभी-कभी नया व्यक्ति स्वयं अपना औपचारिक परिचय देता है । 'तीनवर्ष' की लीला विशाल,[1] 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' की हिल्डा[2], 'आखिरी दाँव' के सेठ शीतलप्रसाद[3], 'अपने खिलौने' के ने वीरेश्वरप्रतापसिंह[4], कैरा कोमल[5] पीतमकमल कोमल[6], रामास्वामी चेट्टियार[7], 'भूले बिसरे चित्र' की लावण्यप्रभा[8], 'सीधी सच्ची बातें' के बशीरअहमद[9], 'प्रश्न और मरीचिका' के प्रेमनाथ, रेवा मदान[10] तथा मेजर अमरजीत[11] आदि का प्रथम परिचय उपन्यासकार ने इसी औपचारिक शैली में करवाया है । प्रथम परिचय के पश्चात् ये पात्र अन्य पात्रों के साथ घुलमिल जाते हैं, एक बार के औपचारिक परिचय में उनकी पर्याप्त विशेषताओं का उल्लेख हो जाता है तथा उनकी पृथक् पहचान बन जाती है ।

कई बार वर्मा जी एक साथ कई पात्रों का परिचय औपचारिक शैली में करवा देते हैं । ऐसा प्राय: तभी होता है जब उन्हें एक स्थान पर एकत्रित कई नए चेहरों को उपस्थित करना होता है । एक साथ कई लोगों का परिचय बेगार टालने के लिए नहीं होता वरन् उन्हें समुचित पहचान देने के लिए उपन्यासकार उनका परिचय एक बार दे देता है, फिर वे पात्र स्वयं अपनी गतिविधियों से पाठक को अपना पूर्ण परिचय देते चलते हैं । यहाँ यह उल्लेख कर स देना आवश्यक है कि कभी यह सामूहिक परिचय संक्षिप्त एवं आवश्यक होता है तो कभी अत्यंत विस्तृत एवं अनावश्यक । 'तीन वर्ष' में मुक्तेश्वरप्रसाद एवं कृष्णानंद (पृ० 50) तथा मुंशी उल्फतराय, शेरसिंह एवं लाला ~~सौहन~~ नौरतनदास (पृ० 160-61) 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में अपूर्व गांगोली, अविनाश घोष तथा हरिपद मलिक(पृ० 81-82), विजयसिंह मार्तण्ड एवं मनमोहन (पृ० 258) तथा 'सीधी सच्ची बातें' में शिवदुलारी देवी एवं सुखलाल चौधरी (पृ० 316) का एक साथ परिचय समीचीन प्रतीत होता है । तथा उसमें अनावश्यक विस्तार भी दृष्टिगत नहीं होता है जबकि वर्मा जी के कई उपन्यासों में विभिन्न राजनीतिक पार्टियों, साहित्यिक गोष्ठियों आदि में उपस्थित अनेक व्यक्तियों का अनावश्यक लम्बा परिचय दिया गया है जिसकी चर्चा अन्यत्र की जायगी ।

1- तीन वर्ष- पृ० 59
2- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 89
3- आखिरी दाँव- पृ० 192
4- अपने खिलौने- पृ० 14
5- ,, पृ० 45
6- ,, पृ० 53
7- ,, पृ० 164
8- भूले बिसरे चित्र- पृ० 360
9- सीधी सच्ची बातें पृ० 317
10- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 142
11- ,, पृ० 172

अनौपचारिक परिचय - कई बार वर्मा जी के उपन्यासों में पात्रों का प्रवेश ऐसी नाटकीय स्थितियों में होता है कि उनके बारे में लेखकीय टिप्पणी या औपचारिक परिचय की गुंजाइश ही नहीं रहती। पात्र अपने गतिशील क्रियाकलापों में स्वयं बहुत कुछ व्यक्त हो जाते हैं, उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया में उनकी चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन स्वयमेव हो जाता है। इसके पश्चात् लेखक की ओर से दिया गया परिचय उन्हें अधिक समग्रता प्रदान कर देता है। 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में डी०एस०पी० विश्वम्भरदयाल का आगमन पूर्णतया अनौपचारिक रूप से हुआ है। प्रभानाथ और उसके साथियों द्वारा डकैती के समय यह चतुर व्यक्ति असहाय पुलिसवालों की सहायता करता है और उपन्यास के अन्तिम पृष्ठों में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। उपन्यास में इस व्यक्ति के प्रथम दर्शन के पश्चात् लगभग एक पृष्ठ के बाद उसका पूर्ण परिचय लेखक के द्वारा करवाया गया है। इसी प्रकार 'पतन' के प्रतापसिंह और सुभद्रा 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' की वीणा, 'तीन वर्ष' के प्रभा, विनोद और वेश्या सरोज, 'आखिरी दाँव' के रामेश्वर, 'भूले बिसरे चित्र' के राधाकिशन और संतो, 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' के नाहरसिंह आदि चरित्रों का परिचय बिल्कुल अनौपचारिक रीति से हुआ है। यहाँ उल्लेख है कि जब किसी पात्र का अभ्युदय किसी विशेष नाटकीय स्थिति में होता है, तभी उसका परिचय अनौपचारिक रह पाता है; अन्यथा वर्मा जी के चरित्र-परिचय की मुख्य प्रवृत्ति यही है कि वे घटनाओं की पूर्व भूमिका बाँधकर उससे सम्बंधित चरित्रों का प्रवेश करवाते हैं और वह पात्र एक-दो वाक्य बोलता है कि वर्मा जी स्वयं या किसी अन्य पात्र के द्वारा उसके रूपाकार, वेशभूषा स्वभाव आदि का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित परिचय पाठक से करवा देते हैं। 'चित्रलेखा' में बीजगुप्त और चित्रलेखा का प्रस्तुतीकरण बड़ी ही नाटकीय स्थिति में हुआ है और यदि कुछ देर उपन्यासकार धैर्य रखता तो उनके क्रिया-कलाप एवं वार्तालाप से उनका चरित्र बहुत-कुछ स्पष्ट हो सकता था, किन्तु उपन्यासकार ऐसा नहीं कर पाता। बीजगुप्त के एक प्रश्न के पश्चात् वह बीच में आ जाता है - "चित्रलेखा की अधखुली आँखों में मतवालापन था और उसके अरुण कपोलों में उल्लास था। यौवन की उमंग में सौन्दर्य किलोलें कर रहा था, आलिंगन के पाश में वासना हँस रही थी।"[1] उपन्यासकार की इस टिप्पणी से चित्रलेखा का परिचय अनौपचारिक नहीं रह पाता; यद्यपि वर्मा जी की कलात्मक भाषा ने चित्रलेखा के औपचारिक परिचय में भी अप्रतिम सौन्दर्य भर दिया है, तथापि चरित्रांकन-कला के सौन्दर्य में कमी आ गयी है। ऐसे ही जाने कितने चरित्रों का परिचय अनौपचारिक परिचय की स्थितियाँ होते हुए भी औपचारिक रीति से करवाया गया है।

1- चित्रलेखा- पृ० 9

पूर्वाग्रहपूर्ण परिचय: - अपने उपन्यासों के विभिन्न पात्रों के सम्बंध में प्रत्येक उपन्यासकार की पूर्व धारणा तो होती है है, किन्तु पात्रों के प्रथम दर्शन के समय ही उस धारणा को पाठक पर लादना शोभनीय प्रतीत नहीं होता । प्राय: अधिकांशत: उपन्यासकार इस दोष से अपने को मुक्त नहीं रख पाते, यहाँ तक कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में भी यह पूर्वाग्रह कम-ज्यादा मिल ही जाता है ।[1] वर्मा जी के उपन्यासों में तो यह दोष अनुपेक्षणीय रूप से विद्यमान है । उनके प्रथम उपन्यास 'पतन' से लेकर अंतिम उपन्यास 'प्रश्न और मरीचिका' में यह प्रवृत्ति परिलक्षित की जा सकती है । 'पतन' में प्रकाशचन्द्र और सरस्वती का परिचय उपन्यासकार के शब्दों में द्रष्टव्य है -"उसकी (प्रकाशचन्द्र) स्त्री का नाम सरस्वती था, और सरस्वती जिस समय ससुराल आई थी, उस समय पूरे सोलह वर्ष की हो चुकी थी ।सरस्वती गंभीर प्रकृति की थी, और जैसी कि उसने शिक्षा पाई थी, वह धर्म-निष्ठा थी । पर प्रकाशचन्द्र और सरस्वती में आकाश-पाताल का अन्तर था । सरस्वती सुन्दरी थी - एक प्रकार से वह अतुल सुंदरी भी कही जा सकती थी । और प्रकाशचंद्र यदि वदसूरत न था, तो खूबसूरत भी न था । उसका रंग गेहुआँ था, और उसके मुख पर रूखापन छाया हुआ था ।"[2] इतना ही नहीं यह परिचय लगभग चार पृष्ठों तक चलता है जिससे उपन्यासकार की पात्रों के सम्बंध की विशिष्ट धारणा पाठक को पूर्णरूपेण आक्रांत कर लेती है । इसी प्रकार 'प्रश्न और मरीचिका' से एक उदाहरण देखिए -"यह केसरबाई मेरे सबसे बड़े दोस्त शिवकुमार गाबड़िया के पिता रामकुमार गाबड़िया की रखैल है और उसे शिवकुमार आन्टी कहता है । केसरबाई की अवस्था सत्ताइस या अट्ठाइस साल की होगी,लेकिन वह उन्नीस-बीस वर्ष की दिखती है । बला की मस्ती है इस केसरबाई में - चुलबुली और हँसमुख । लेकिन अगाध ममता है उसके हृदय में ।------ मझोले कद की गोरी-सी स्त्री, गोल चेहरा, माथे पर लाल बिन्दी । टूटी-फूटी हिन्दी बोलती है और उसके मुख से यह हिन्दी बड़ी प्यारी लगती है । धर्म पर असीम आस्था ।उसके पूजा-गृह में व्यंकटेश्वर भगवान और गणेश जी की चाँदी की मूर्तियाँ हैं । रोज़ सुबह स्नान करके वह एक घण्टा पूजा करती है ।"[3] केसरबाई के इस परिचय के पश्चात् उसके बारे में जानने को कुछ शेष नहीं रहता, उससे सम्बंधित उपन्यास की प्रत्येक घटना उपर्युक्त परिचय की पुष्टि करती है ।

उपन्यासकार का यह पूर्वाग्रह गौण अथवा सामान्य पात्रों के परिचय के समय अधिक

1- हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ० 346 से 348 तक 403

2-

3- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 17

प्रबल हो जाता है । उपन्यास के प्रमुख पात्रों का परिचय एकबार देने के पश्चात् उनके चरित्र में विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार उतार-चढ़ाव भी आता है, किन्तु उपन्यास के पृष्ठों में मात्र थोड़ी देर रहने वाले पात्रों की सम्पूर्ण रूपरेखा वर्मा जी स्पष्ट कर देना चाहते हैं, ताकि उन्हें स्मरणीय बनाया जा सके । विशेष रूप से, विभिन्न पार्टियों, सभाओं एवं गोष्ठियों में एकत्रित दर्जनों पात्रों का परिचय उपन्यासकार इतनी तन्मयता से कराने लगता है, कि कथा का समस्त प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है ।[1] इन पात्रों की भीड़ के विस्तृत परिचय की विशेष उपयोगिता भी सिद्ध नहीं हो पाती, क्योंकि इनमें से अधिकांश के दुबारा दर्शन भी नहीं होते। `सामर्थ्य और सीमा` के सभी प्रमुख पात्रों का परिचय भी इतना अधिक विस्तृत एवं पूर्वाग्रह-ग्रस्त है कि पाठक उसमें कोई रस नहीं ले पाता और पृष्ठ पलटने के लिए विवश हो जाता है।

<u>अनावश्यक लम्बा परिचय :-</u> वर्मा जी के उपन्यासों में कुछ पात्रों का प्रथम परिचय अनावश्यक-रूप से अत्यधिक लम्बा हो गया है । `पतन` के प्रथम परिच्छेद में नवाब वाजिदअली शाह का परिचय अत्यधिक लम्बा खिंच गया है, वर्मा जी की रोचक शैली ने उसे नीरस तो नहीं होने दिया है, किन्तु उसे पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है मानो उपन्यासकार नवाब साहब के बारे में ज्ञात प्रत्येक बात को लिख डालना चाहता है । इस विवरण की अनुपयोगिता तब अधिक खलती है, जब हम देखते हैं कि पूरे उपन्यास में नवाब साहब के करने के लिए कोई विशेष कार्य नहीं है । ऐसे अनावश्यक विस्तृत परिचय उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में ही दिये गये हों, ऐसा नहीं है प्रत्युत् उनके सभी उपन्यासों में यह प्रवृत्ति मिल जाती है ।`सामर्थ्य और सीमा` में तो रतनचन्द्र मकोला, वासुदेव चिन्तामणि देवलंकर, ज्ञानेश्वर राव, पंडित शिवानंद शर्मा एवं एलबर्ट किशन मयूर का प्रथम परिचय लगभग 4-4 पृष्ठों में करवाया है और उसमें उपन्यासकार ने उनका समस्त पूर्ववृत्त समेट लिया है । यद्यपि ये सभी उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं किन्तु उपन्यास के प्रारम्भ में इतना लम्बा परिचयात्मक विवरण पढ़ने के लिए पाठक तैयार नहीं होता और इस इतिवृत्त से चरित्र-चित्रण की समस्त कलात्मकता समाप्त हो जाती है । इसी प्रकार `पतन` में गुलनार, `अपने खिलौने` में मीना तथा `रेखा` में रेखा का प्रथम परिचय अनावश्यक-रूप से विस्तृत हो गया है ।

1- विशेष द्रष्टव्य हैं -`तीन वर्ष` -पृ० 27 से 31, `टेढ़े मेढ़े रास्ते` -पृ० 17 से 21, 81, 82, 216, 219 से 241, `भूले बिसरे चित्र` -237 से 239, `सीधी सच्ची बातें` -पृ० 316, प्रश्न और मरीचिका- पृ० 39 से 41

अतिशयोक्तिपूर्ण परिचय :- वर्मा जी ने कहीं-कहीं अपने पात्रों का अत्यंत काव्यात्मक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण परिचय भी करवाया है, विशेषरूप कुछ सुन्दरी युवतियों के परिचय में मानों उनकी लेखनी मचल गयी है। इस संदर्भ में 'पतन' की गुलनार के परिचय में तो उपन्यासकार ने रीतिकालीन कवियों को भी पीछे छोड़ दिया है। उसने गुलनार के मुख की चँद्रमा, दाँतों की मोती, आँखों की मृगी की आँखों, पुतलियों की काजल से उपमा दी है। गुलनार का यह अतिशयोक्तिपूर्ण एवं भावुक कवियों-सा वर्णन लगभग दो पृष्ठों में किया गया है।[1] इसी प्रकार 'चित्रलेखा'[2], श्यामला[3], रानी मानकुमारी[4] और रेखा[5] के रूप वर्णन में वर्मा जी ने अपना कवि-हृदय उँड़ेलकर रख दिया है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में उनकी विशिष्टाकृति एवं वेश-भूषा का भी विशेष महत्व रहता है, इसके माध्यम से उपन्यासकार पात्रों के सम्बंध में मनोवांछित प्रभाव डालने का प्रयत्न करता है। इतना ही नहीं, उनकी आकृति और वेशभूषा में होनेवाले परिवर्तनों का चित्रण करके वह पात्रों की मनोदशा में होनेवाले परिवर्तनों की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करना चाहता है।

आकृति- वेशभूषा-चित्रण

पाठकों की कल्पना में औपन्यासिक पात्र साकार होकर गतिशील हो उठें, इसके लिए उनकी रूपाकृति एवं वेशभूषा का वर्णन करना उपन्यासकार के लिए एक प्रकार से आवश्यक हो जाता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार यद्यपि बहिरंग-चित्रण को अनावश्यक मानते हैं, तथापि उनके उपन्यासों में भी आकृति एवं वेशभूषा का चित्रण बिल्कुल न हो, ऐसा नहीं हो सकता। वर्मा जी के उपन्यासों में पात्रों के नख-शिख के विस्तृत वर्णन की प्रवृत्ति अत्यल्प मात्रा में दिखती है, उनके व्यक्तित्व की समग्र छवि को शब्दों में उतार देने में ही उनका विश्वास है। उपन्यास की आलोचना में प्रचलित 'ब्लैक-करैक्टराइजेशन' अर्थात् घनीभूत पिंडित चरित्र-चित्रण (इसे वर्मा जी ने स्वयं Broad Brushes की कला कहा है) का प्रयोग वर्मा जी ने अधिक किया है। चरित्र-चित्रण की इस प्रणाली के द्वारा उपन्यासकार

1-	पतन-	पृ० 43-44
2-	चित्रलेखा-	पृ० 23,27
3-	वह फिर नहीं आई-	पृ० 105-6
4-	सामर्थ्य और सीमा-	पृ० 55
5-	रेखा-	पृ० 7

पात्र की जिन विशेषताओं को उभारना चाहता है, उन्हें ही एक साथ चित्रित कर देता है, और जब उनकी वेशभूषा आदि में उसे कोई परिवर्तन वांछित होता है तभी उसका उल्लेख करता है; अन्यथा पात्र सर्वप्रथम चित्रित रूप में ही समग्र उपन्यास में जीते रहते हैं ।

रूपाकृति चित्रण :- वर्मा जी ने अपने पात्रों की शारीरिक विशेषताओं को साकार करने के लिए प्राय: उनकी आकृति का उल्लेख अवश्य किया है । रूपाकृति के विस्तृत वर्णन में तो वह उलझे नहीं है किन्तु दो-चार विशेषताओं के आधार पर वर्मा जी उनका एक विशिष्टरूप अवश्य प्रस्तुत कर देते हैं । अपने कथन की पुष्टि के लिए हम कुछ उद्धरण प्रस्तुत कर सकते हैं । 'तीन वर्ष' का नायक रमेश जब पहली-पहली बार इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ने पहुँचता है तो उसके समग्र दर्शन में रूप वर्णन का अंश इस प्रकार है -"एक लम्बी-सी चुटिया उस टोपी के बाहर पीछे की ओर निकली हुई थी । विद्यार्थी की अवस्था लगभग अठारह वर्ष की थी । ----- विद्यार्थी का रंग गोरा था, उसका मुख गोल, मसें भीग रही थीं ; पर दाढ़ी पर अभी तक उस्तरा न चला था ।"[1] यही रमेश जब 'तीन वर्ष' पश्चात् जीवन-संघर्ष के अनेक उतार-चढ़ाव देखकर पुन: इलाहाबाद पहुँचता है तो उसका गोरा रंग तो वही रहता है किन्तु उसकी मुखाकृति में बहुत अंतर दिखलाया गया है -"इकहरे बदन का लम्बा-सा युवक था । उसका मुख सुन्दर था और रंग गोरा था । चौड़े मस्तक पर चिन्ता की गहरी लकीरें पड़ गयी थीं । गाल धँस गये थे । आँखें बड़ी-बड़ी किन्तु पथराई हुई -सी थीं, जिनमें कभी-कभी यौवन की आग की क्षीण तथा क्षणिक चमक आ जाती थी । उन आँखों के चारों ओर कालिमा की एक हल्की-सी परिधि खिंची हुई थी । उसके बाल बड़े-बड़े और रूखे थे और बड़ी असावधानी से खिंचे हुए थे ।"[2] यह तो उपन्यास के नायक का चित्र है, इसके विपरीत एक अत्यंत सामान्य पात्र की रूपाकृति द्रष्टव्य है -"चौधरी हरभजन की अवस्थाप्राय: पैंसठ साल की थी और आगरा ज़िले के जाटों में वह सबसे अधिक सम्मानित व्यक्ति समझे जाते थे । और तगड़े -से आदमी, घने सन की तरह सफ़ेद गलमुच्छे, चेहरे पर रोब ।"[3] इस छोटे -से शब्द-चित्र द्वारा एक जाट की छवि हमारी आँखों के सामने तैर जाती है और इस चित्रण के पश्चात् जब हम चौधरी हरभजन की गतिविधियों का अवलोकन करते हैं तो हमें उनके जाट होने में, उनके रोबीले एवं सम्मानित व्यक्ति होने में कोई संदेह नहीं रह जाता । इसी प्रकार विभिन्न वय, रूप, रंग एवं सेक्स के पात्रों का यथावश्यक वर्णन वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में किया है । अधिक विस्तृत विवरण देना अनावश्यक है ।

1- तीन वर्ष- पृ० 5
2- ,, पृ० 1
3- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 273

विशिष्ट वेशभूषा में चरित्र-विकास के मोड़ :- अपने पात्रों की विशिष्ट रूप-छवि प्रकट करने के लिए वर्मा जी उनकी वेशभूषा का थोड़ा-बहुत संकेत अवश्य कर देते हैं। कुछ विशेष पूर्वाग्रह होने पर तो उनके सर की टोपी से लेकर पैर के मोजे तक का पूरा ब्यौरा भी वर्मा जी दे देते हैं। परन्तु, अधिकांशतः बड़े नपे-तुले शब्दों में वर्मा जी पात्र की वेशभूषा वर्णित कर देते हैं। 'पतन' के अत्यंत सामान्य चरित्र मुंशीरामसहाय को देखिए -"उनके कान पर क़लम खुसी हुई थी, और उनका चश्मा, जिस पर सुतली की कमानी चढ़ी हुई थी, उनके माथे को सुशोभित कर रहा था।"[1] यहाँ उपन्यासकार ने मुंशी जी के पहनावे की ओर ध्यान नहीं दिया है, किन्तु इन दो बातों के द्वारा ही पाठक की कल्पना में एक मुंशी का चित्र स्वयमेव बन जाता है।

वर्मा जी प्रायः पात्रों के प्रथम दर्शन की हुलियानवीसी के द्वारा ही उनका चित्र प्रस्तुत कर देते हैं, किन्तु जहाँ उन्हें आवश्यक प्रतीत हुआ है, वहाँ उन्होंने पात्रों की विशेष मनःस्थिति एवं रुचि आदि के परिवर्तन को लक्ष्य करके उनकी वेशभूषा के परिवर्तन का उल्लेख अवश्य कर दिया है। 'भूले बिसरे चित्र' के नवल के वार्तालाप से ऐसा लगता है कि वह पहनने-ओढ़ने का बड़ा शौकीन है[2]; किन्तु उसकी विचारधारा के परिवर्तन की सूचना उपन्यासकार ने नवल के नये सिलवाये कपड़ों के द्वारा दी है। नवल कांग्रेस-आन्दोलन की ओर सक्रिय होकर बढ़ना चाहता है अतः अपने लिए सब खद्दर के कपड़े बनवाता है।[3] विधवा रानी मानकुमारी अपने अतिथियों के आगमन पर 'गहरे नीले रंग की हल्की जरतारी की साड़ी एवं हीरे के जड़ाऊ कंगन और हीरे के हार'[4] से अपना श्रृंगार करती हैं। इस वेशभूषा के द्वारा वर्मा जी ने यह संकेत किया है कि रानी के हृदय में अपने विशिष्ट अतिथियों को आकर्षित करने, जीवन की रंगीनी की ओर पुनः लौटने की अदम्य लालसा छिपी हुई थी। इसी प्रकार पात्रों की विशिष्ट मनःस्थितियों को व्यक्त करने के लिए उनकी वेशभूषा का वर्णन वर्मा जी ने किया है।

यहाँ एक बात का उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है, वर्मा जी ने विशिष्ट समारोहों, पार्टियों एवं अवसरों पर सुन्दरी युवतियों के परिधान में फ्रेंच क्रेप या ब्रोकेड की जरतारी की साड़ी और फर के कोट का उल्लेख प्रायः किया है। हो सकता है कि अब से कुछ वर्ष पूर्व बहुमूल्य परिधान का यही सर्वोच्च प्रतिमान हो अथवा किसी युवती

1-	पतन-	पृ0 84
2-	भूले बिसरे चित्र-	पृ0 563
3-	,,	पृ0 650
4-	सामर्थ्य और सीमा-	पृ0 134

की ऐसी पोशाक ने वर्मा जी को अत्यधिक प्रभावित किया हो - इसीलिए उन्होंने बार-बार इस प्रकार की वेशभूषा का उल्लेख किया है ।[1]

स्थित्यंकन

किसी भी व्यक्ति का स्वभाव एवं आचरण सदैव एक-सा नहीं रहता, विभिन्न स्थितियों में पड़कर उसका रूप परिवर्तित होता रहता है, इसीलिए उपन्यासकार के लिए पात्रों की विभिन्न वाह्य एवं मानसिक स्थिति का अंकन अत्यंत आवश्यक है ।

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में औपचारिक एवं अनौपचारिक स्थितियों का बड़ी कुशलता से समावेश किया है । कभी वे योजनाबद्ध रूप से स्थितियों का निर्माण कर इस प्रकार से लाते जाते हैं कि उनमें पड़कर पात्रों के विविध रूप प्रकाशित होते जाते हैं, तो कभी अनपेक्षित स्थितियों के अकस्मात् उपस्थित हो जाने से पात्रों के अन्तस् की उन भावनाओं का भी उद्घाटन हो जाता है जिन्हें सामान्य स्थिति में वे किसी दूसरे पर प्रकट नहीं करना चाहते ।

औपचारिक स्थितियाँ :- जिन स्थितियों की पूर्व सूचना पात्रों को मिल जाती है,उन औपचारिक स्थितियों में पात्र सजग हो जाते हैं और उनका आचरण कृत्रिम होता है,फिर भी स्थिति से निपटने की व्यवहारकुशलता,वाक्पटुता एवं सहजता उनके चारित्रिक गुणों का प्रकाशन करती है । इसके अतिरिक्त गोष्ठियों,राजनीतिक बैठकों,सहभोजों जैसे सार्वजनिक स्थलों पर विभिन्न पात्रों के मिलन से उनका पारस्परिक परिचय बढ़ता है और उनके आपसी व्यवहार से उनके चरित्र के बन्द पृष्ठ खुलते जाते हैं । वर्मा जी के उपन्यासों में अधिकांशतः औपचारिक स्थितियों को ही स्थान मिला है । उदाहरणस्वरूप यशोधरा की वर्षगाँठ के अवसर पर दिये गये भोज में भद्र-महिलाओं के अपमान के लिए चित्रलेखा पहले से तैयार होकर गयी थी । इस घटना के द्वारा चित्रलेखा के प्रखर, किन्तु संयमशील व्यक्तित्व का उद्घाटन होता है । भद्र स्त्रियों के अपमान का उत्तर तो वह बड़ी कटु वाणी में देती है, किन्तु बीजगुप्त के पूछने पर एकदम शान्त होकर उत्तर देती है ; वरन् अपने मनोगत भावों को छिपाकर हँसने भी लगती है । इसी स्थल पर चित्रलेखा का नृत्य बंद करवाकर मृत्युंजय द्वारा कुमारगिरि का स्वागत करना चित्रलेखा को अतीव अपमानजनक लगता है और वह वहाँ से चली जाना

1- देखिए -`अपने खिलौने` -पृ० 59,`वह फिर नहीं आई`- पृ० 106,`भूले बिसरे चित्र`-पृ० 286, और `रेखा`-पृ० 62 ।

चाहती है, किन्तु यशोधरा के आग्रह पर नृत्य प्रारम्भ कर वह अपने शिष्टाचार का परिचय देती है।[1] ऐसी ही अनगिनत स्थितियाँ वर्मा जी के उपन्यासों में बड़ी कुशलता से प्रस्तुत की गयी हैं।

स्थित्यंश पर कैमरे का फोकस :-औपचारिक स्थितियों में भी अपने प्रमुख पात्रों के चरित्र को उभारने के लिए वर्मा जी अपना ध्यान मुख्यत: प्रमुख पात्रों पर ही केन्द्रित किए रखते हैं। सम्पूर्ण स्थिति का ब्यौरेवार वर्णन न करके वह मुख्य पात्रों के क्रियाकलाप का चित्रण कर अनावश्यक तत्व का विस्तार नहीं करते। 'रेखा' शीर्षक उपन्यास में रेखा शीरीं के सगाई-समारोह के औपचारिक वातावरण के लिए पूर्णतया तैयार होकर जाती है, उस समारोह की भव्यता, सजधज एवं इतिवृत्तात्मक वर्णन आदि में न उलझकर वर्मा जी रेखा, रत्ना चावला, निरंजन कपूर, एवं सोमेश्वर के वार्तालाप के द्वारा इन चरित्रों के अन्तरतम को प्रकट करने के लिए अपना कैमरा इन्हीं पात्रों पर 'फोकस' रखते हैं।[2] इतना ही नहीं आगे की घटनाओं की पूर्व पीठिका भी तैयार कर लेते हैं। ऐसी स्थितियों में वर्मा जी की सूझबूझ एवं पकड़ की प्रशंसा करनी पड़ती है।

असाधारण स्थितियाँ :-वर्मा जी के उपन्यासों में ऐसी असाधारण स्थितियाँ भी पुष्कल परिमाण में मिलती हैं जिनसे पात्रों का नितांत स्वाभाविक आचरण प्रकट होता है। ऐसी स्थितियों में अत्यंत चतुर पात्र भी अपनी आधारभूत वृत्तियों को छिपाकर नहीं रख पाते। कभी-कभी विषम मानसिक स्थिति में से उबारने के लिए भी ऐसी असाधारण स्थितियों का निर्माण किया जाता है। 'भूले बिसरे चित्र' में गंगाप्रसाद के विलासी और खर्चीले होने की ओर संकेत तो किया जाता है, किन्तु उसे प्रमाणित करने के लिए कोई घटना घटित नहीं होती। तभी दिल्ली दरबार के लिए जाते हुए अकस्मात् उसकी भेंट संतो से होती है और उसके जीवन में संतो के प्रवेश से उक्त प्रवृत्तियों का उद्घाटन होता है। एक बार संतो से उसका अवैध सम्बंध होता है तत्पश्चात् मानो वह उसकी आवश्यकता बन जाता है। यहाँ तक कि वह मलका को अपनी रखैल के रूप में ही रख लेता है। 'सीधी सच्ची बातें' में जगतप्रकाश यमुना के विवाह से निराश होकर कुलसुम से जुड़ना चाहता है, किन्तु यहाँ भी उसका स्वप्न भंग होता है और वह इस मानसिक स्थिति में पहुँच जाता है कि पाठक उसके अगले कदम की

1- चित्रलेखा- पृ० 71,73

2- रेखा- पृ० 118 से 122 तक

कल्पना नहीं कर पाता है। पहले तो जगतप्रकाश कुलसुम के प्रति एकदम कटु हो जाता है। अचानक उसे सैलाव का स्मरण हो आता है और वह सेना में भरती होने का निश्चय कर लेता है। इस स्थिति से उसका मानसिक संघर्ष समाप्त हो जाता है और वह अपने को बेहद हल्का महसूस करता है -"एक नवीन उमंग, एक नवीन उत्साह। जगतप्रकाश अपने निर्णय पर बेहद प्रसन्न था। उसका मन हल्का था, उसके अन्दर वाली सारी उदासी जाती रही थी।"[1]

इसी प्रकार की अकस्मात् घटनाओं एवं असाधारण स्थितियों के द्वारा वर्मा जी के उपन्यासों में प्राय: पात्रों के जीवन के नवीन पहलू को उभारा गया है।

क्रिया प्रतिक्रिया -चित्रण

किसी भी व्यक्ति के शारीरिक सौष्ठव की अपेक्षा विभिन्न परिस्थितियों में उसके आचरण, क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ उसे पहचानने में अधिक सहायक हुआ करती हैं। एक ही स्थिति में दो विभिन्न व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएँ उनमें पार्थक्य स्थापित करती है। उदाहरण-स्वरूप 'सीधी सच्ची बातें' में बंगाल के अकाल के समय अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए जमील अहमद और जगतप्रकाश दोनों ही जाते हैं, किन्तु दोनों की प्रतिक्रियाओं में ज़मीन आसमान का अन्तर दिखता है। जहाँ जमील प्रत्येक स्थिति में बड़े धैर्य और साहस का परिचय देता है, वहीं जगतप्रकाश मृत्यु के तांडव नृत्य से घबड़ा उठता है और 'नर्वसब्रेक डाउन' का शिकार हो जाता है। अंतत: जमील को उसे कलकत्ता से लेकर लौट आना पड़ता है। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में राधेश्याम की पत्नी गंगादेवी जबरसिंह को प्रसन्न करने के लिए उनकी पत्नी धनवन्तकुँवर को हीरे के सेट का प्रेमपहार में देना चाहती है, किन्तु उस स्थिति में धनवन्तकुँवर का व्यवहार उसकी स्वाभिमानी, निर्लोभी एवं कुलीन प्रवृत्ति का द्योतन करता है।[2]

आवेगज आचरण

आवेशयुक्त मन:स्थिति में कोई भी व्यक्ति ऐसे विरोधी आचरण कर बैठता है, जो उसके स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल हुआ करता है। ऐसी आवेशयुक्त क्रियाएँ पात्रों की स्वाभाविक विशिष्टताओं का द्योतन न करके उनकी तात्कालिक मन:स्थिति को ही व्यक्त करती हैं। इनका समावेश उपन्यासकार विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करता है, यथा-

---

1- सीधी सच्ची बातें - पृ० 421

2- सबहिं नचावत राम गोसाईं-पृ० 210 से 213

कथा में नवीन मोड़ लाने के लिए, पात्रों के चारित्रिक विकास के लिए, उनके अदृश्य गुणावगुणों के प्रकाशन के लिए तथा आवेश में पात्रों की हत्या या आत्महत्या करवाकर कथानक समेटने के लिए। वर्मा जी ने इन सभी उद्देश्यों से पात्रों की आवेशपूर्ण स्थिति का लाभ उठाया है।

'तीन वर्ष' में रमेश के प्रारम्भिक चरित्र को देखकर यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वह अपने परम हितैषी मित्र की हत्या करने के नीच कर्म तक उतर आयेगा, किन्तु यह घटना रमेश की अति असंतुलित मानसिक स्थिति की परिचायक है। ~~प्रभा के प्रेम की असंतुलित मानसिक स्थिति की परिचायक है।~~ प्रभा के प्रेम की असफलता और उस पर अजित की प्रतिक्रिया के कारण रमेश इस उन्माद की स्थिति में पहुँच जाता है, किन्तु इसी समय वस्तुस्थिति का भान होते ही वह बेहोश हो जाता है। रमेश का बेहोश हो जाना ही इस बात को दर्शाता है कि वह स्वयं अपने आचरण पर विश्वास नहीं कर पाता और घबराकर बेहोश हो जाता है। इस घटना से उपन्यासकार ने रमेश की असंतुलित मानसिक स्थिति का उद्घाटन तो किया है, प्रकारान्तर से यह भी दिखाया है कि वह ऐसी विषम स्थिति में तनिक भी संयम और विवेक का परिचय नहीं दे पाता वरन् परिस्थिति उस पर पूर्णरूपेण हावी हो सकती है। इसके अतिरिक्त वर्मा जी ने कथा में नवीन मोड़ लाने के लिए भी इस घटना का उपयोग किया है। रमेश अपने इस आवेशपूर्ण आचरण से इतना शर्मिन्दा होता है कि इलाहाबाद छोड़कर ही चला जाता है। उसके अचानक कानपुर पहुँच जाने पर रमेश के जीवन का नवीन अध्याय खुलता है और उपन्यास का दूसरा खण्ड प्रारम्भ होता है।

'सामर्थ्य और सीमा' में रानी मानकुमारी के यहाँ अतिथियों की दावत के समय रघुराजसिंह शैम्पेन के नशे में अपना आपा खो देता है और लोभी अतिथियों पर पहले हँसी में व्यंग्य करता है - "हिम्मत की बात कुछ न कहिए रानी सरकार, हिम्मत तो आजकल चोरों और लुटेरों में केन्द्रीभूत हो गयी है आकर। और यह कहावत तो प्रसिद्ध है कि खबरों के भी पंख होते हैं। तो अब स्थिति यह है कि कुछ लोग रानी सरकार की ज़मीन-जायदाद पर आँखें लगाए हैं, कुछ लोग रानी सरकार के हीरे-जवाहरातों पर आँखें लगाए हैं और--- और कुछ लोग स्वयं रानी सरकार पर आँखें लगाए हैं।"[1] इसके पश्चात् उसका व्यंग्य क्रोधावेश में परिणत हो जाता है और वह उग्र स्वर में कहता है - 'रानी सरकार को आप लोग देख रहे हैं - दया,

---

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 152

ममता की मूर्ति। लोग रानी सरकार को मान और मर्यादा के साथ ज़िन्दा नहीं रहने देना चाहते। हर तरफ़ से रानी सरकार को तबाह करने, नष्ट करने के प्रयत्न हो रहे हैं। यह क्यों ? मैं कहता हूँ यह इसलिए कि जो व्यवस्था तुमने बनाई है, वह गन्दी है, घृणित है।"[1] ऊपर से कठोर दिखने वाले रघुराजसिंह[2] के हृदय में इतनी दया, संवेदना और ममता छिपी है, इस अप्रत्यक्ष एवं अव्यक्त गुण की अभिव्यक्ति उसके आवेशपूर्ण शब्दों के द्वारा ही हो सकी है।

'भूले बिसरे चित्र' में क्रोध में आकर सुराही से अपना सिर फोड़कर मृत्यु का आलिंगन करने की घटना जहाँ मुंशी शिवलाल की तात्कालिक मनोदशा का चित्रण करती है, वहीं उनके अत्यंत महत्वाकांक्षी स्वभाव की पुष्टि भी करती है। इस घटना के द्वारा कथाकार ने शिवलाल की मृत्यु दिखलाकर शिवलाल सम्बंधित प्रकरण समाप्त कर दिया है और इस प्रकार कथा को समेटने का यत्न किया है।

वर्मा जी के उपन्यासों में आवेगज आचरणों को कथानक समेटने अथवा कथानक को नवीन दिशा देने की अपेक्षा पात्रों की मन:स्थिति प्रकट करने तथा उनके अव्यक्त गुणों को प्रकाशित करने के लिए अधिक प्रयुक्त किया गया है।

उपन्यासकार द्वारा टीका-टिप्पणी

प्रत्येक उपन्यासकार जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को अपने उपन्यासों में प्रकट करता है, किन्तु उपन्यासकार की सफलता इस बात में निहित है कि वह अपने विचारों को घटनाओं, पात्रों के कथनों एवं उनकी प्रतिक्रियाओं के द्वारा इस प्रकार से व्यक्त करे कि पाठक को उसके विचार बोझिल न लगें और न ही उसे उपन्यासकार की उपस्थिति का कटु अभ्यास हो। उपन्यासकार की अनावश्यक टीका-टिप्पणी से उपन्यास की कलात्मकता किसी सीमा तक समाप्त हो जाती है।

प्रतिक्रिया की पूर्व सूचना :- किसी स्थिति में पात्रों को डालने के पूर्व उनकी प्रतिक्रिया का पूर्वाभास अपनी टीका-टिप्पणी से देना उपन्यासकार का दोष माना गया है। वर्मा जी के उपन्यासों में भी यह दुर्बलता यदाकदा देखी जा सकती है। कभी-कभी वे अपने अनुभवों को पात्रों की प्रतिक्रियाओं पर आरोपित कर देते हैं, किन्तु 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' की कलकत्ता

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ0 153

2- वही, पृ0 101

विषयक टिप्पणी[1] जैसे स्थल तो नगण्य हैं। वर्मा जी का अनुभव, जीवन-दर्शन एवं चिन्तन-मनन प्राय: पात्रों के कथोपकथन एवं तर्क वितर्क के माध्यम से प्रकट हुआ है; कभी-कभी उन्होंने अपने चिन्तन को पात्र के चिन्तन से एकात्म करके प्रकट किया है। यह बात दूसरी है कि यह चिन्तन-मनन कथा के प्रवाह को अवरुद्ध कर दे और पाठक नीरसता का अनुभव करने लगे; किन्तु पात्र के स्थिति में पड़ने से पूर्व, पात्र की प्रतिक्रिया की सूचना उपन्यासकार की टिप्पणी से मिलने की स्थितियाँ वर्मा जी के उपन्यासों में बहुत कम दृष्टिगत होती हैं।

<u>सिद्धान्त-व्याख्या</u> :- पात्रों के चरित्र-विकास के किसी विशिष्ट मोड़ के प्रेरक-तत्वों पर प्रकाश डालने के लिए तथा कार्य-कारण का औचित्य बिठालने के लिए सिद्धान्त-प्रतिपादन के रूप में अपनी टिप्पणी जोड़ देने की प्रवृत्ति वर्मा जी के उपन्यासों में प्राय: मिलती है। यह टिप्पणी कभी पात्र के आचरण के पूर्व होती है तो कभी उसके बाद। कभी-कभी वह अनावश्यक होने के कारण अरुचिकर एवं अकलात्मक भी प्रतीत होती है। 'भूले बिसरे चित्र' से एक उदाहरण देखा जा सकता है। मुंशी शिवलाल द्वारा सिर फोड़ दे लेने के पहले ही उपन्यासकार सिद्धान्त-प्रतिपादन कर देता है -" क्रोध को पागलपन का दूसरा रूप माना जाता है। पागलपन के दौरे की भाँति क्रोध का भी दौरा होता है जिसमें मनुष्य अपने पर से अधिकार खो बैठता है।"[2]

'पतन' में तो बंदेहसन की प्रतिक्रिया को बहुत देर तक सैद्धांतिक टिप्पणी से जोड़ा गया है, कुछ अंश द्रष्टव्य है -" मस्तिष्क और हृदय में भेद होते हैं। तर्कणा-शक्ति का भावों तथा हृदयोद्गारों से कोई सम्बंध नहीं। मनुष्य में एक कमज़ोरी होती है, वह यह कि वह तर्कणा-शक्ति की हृदयोद्गारों के सामने उपेक्षा करता है। हम जानते हैं, हमें प्रेम के बदले प्रेम की आशा न करनी चाहिए। फिर भी यदि वह व्यक्ति, जिससे हम प्रेम करते हैं, जब हमारे प्रेम की उपेक्षा करता है, हमें क्रोध होता है - दु:ख होता है। दु:खी होना किसी अंश तक क्षम्य है, क्योंकि उससे स्वयं का ही सम्बंध है। पर क्रोध करना पाप है, क्योंकि उसका सम्बंध बहिर जगत से है।"[3] इस पूरी सिद्धान्त की परिणति कथाकार बंदेहसन

1- डॉ० रांग्रा ने लिखा है कि "भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में भी ऐसे स्थलों की कमी नहीं, जहाँ वह सीधे पाठकों के सामने आकर किसी स्थिति-विशेष पर, पात्रों की किसी क्रिया-प्रतिक्रिया पर या उस पर प्रकाश डालने के लिए, अथवा उनके जीवन में आनेवाले मोड़ों की पूर्व सूचना देने के लिए अपनी ओर से टीका-टिप्पणी आरम्भ कर देते हैं।" और इस प्रसंग में उन्होंने 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' (पृ० 57 से 59) का उदाहरण दिया है।
देखिए-हिन्दी उपन्यास-में चरित्र-चित्रण का विकास, डॉ० रांग्रा, पृ० 276-77

2- भूले बिसरे चित्र- पृ० 171

3- पतन- पृ० 115-116

पर दिखलाता है -"बदेहसन तर्क का बड़ा पक्षपाती था, इसीलिए उसमें कट्टरता अधिक न थी । फिर भी इस अवसर पर तर्क ने उसका साथ न दिया । एक अपरिचित व्यक्ति को क्या अधिकार कि वह गुलनार से प्रेम करे, जब वह अपरिचित व्यक्ति हिंदू है । उसे राधारमण पर क्रोध था, क्योंकि उसने गुलनार को उससे छीन लिया था । बदेहसन राधारमण के रक्त का प्यासा था ।"[1] उपर्युक्त सैद्धांतिक विवेचन पूर्णतया अनावश्यक हो, ऐसा तो नहीं है, किन्तु अत्यधिक लम्बा खिंच जाने से उसका सौंदर्य नष्ट हो गया है और उसमें नीरसता भी आ गयी है ।

दार्शनिक टिप्पणियाँ

दार्शनिक टिप्पणी के द्वारा किसी पात्र-विशेष के चरित्र के भावी विकास की सूचना देने की प्रवृत्ति वर्मा जी के उपन्यासों में मिलती तो है, किन्तु इसे प्रायः उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में देखा जा सकता है । इसी दृष्टि से 'चित्रलेखा' विशेषरूप से द्रष्टव्य है । 'आखिरी दाँव' में भी चमेली के घर से भागने के बाद और बम्बई में उसके चारित्रिक पतन के पूर्व उपन्यासकार ने एक दार्शनिक टिप्पणी जोड़ दी है -"मनुष्य तभी तक स्थित है जब तक उसके पैरों नीचे वाला चरित्र का धरातल स्थित है । एक बार उसके पैरों के नीचे वाला धरातल खिसका, बस उसका पतन आरम्भ हो गया ।

पतन का विधान- निःसीम है । एक बार जो गिरा उसके लिए रुकना असम्भव है ।"[2]

अपनी परवर्ती कृतियों में उपन्यासकार इस प्रकार की दार्शनिक व्याख्या में स्वयं न उलझकर पात्रों के कथोपकथन एवं चिंतन-मनन के द्वारा उसे अभिव्यक्त करवाता है ।

अनुभाव- चित्रण

व्यक्ति के हाव-भाव एवं मुख पर आते-जाते भावों को देखकर उसकी तात्कालीक मनःस्थिति का बहुत-कुछ अनुमान लगाया जा सकता है, किन्तु उसके साथ शर्त यही है कि ये अनुभाव कृत्रिम न होकर वास्तविक हों । आज के शिष्ट एवं सभ्य समाज में स्थिति के प्रतिकूल होनेवाले मनोविचारों को तत्काल व्यक्त कर देना अशिष्ट-आचरण माना जाता है, अतः ऐसे स्थानों पर लोगों की मुख-मुद्राओं से उनके आन्तरिक भावों को जान पाना प्रायः असम्भव होता है ।

1- पतन- पृ० 115-16

2- आखिरी दाँव- पृ० 17

~~प्राय: असम्भव होता है~~ ।

वर्मा जी के उपन्यासों के पात्र प्राय: या तो उच्चवर्गीय समाज के हैं अथवा उससे सम्बंधित है अत: वे अपने आन्तरिक भावों को छिपाकर कृत्रिम भावों का अभिनय करने में दक्ष होते हैं । बहुत कम ऐसे अवसर आते हैं, जब वे अपने मानसिक विकारों को रोक सकने में असमर्थ होते हों । वर्मा जी ने अपने ऐसे अभिनयशील पात्रों का अत्यंत सफल चित्रण किया है । एक अत्यंत अभिनयपूर्ण दृश्य 'रेखा' से द्रष्टव्य है । रेखा प्रथम बार पर-पुरुष-संसर्ग के कारण भयानक अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित है, शारीरिक तृप्ति से मिले आनंद के पश्चात् उसमें भयंकर मानसिक अशांति व्याप्त हो गयी थी, उसके इस रूप को देखकर प्रभाशंकर पूछते हैं - "क्यों, क्या बात है, जो तुम आज चुप हो ? तबीयत तो ठीक है ?"

रेखा ने अपने को सुस्थिर करते हुए कहा, "हाँ तबीयत तो ठीक है । कल रात ठीक तौर से नींद नहीं आई, और आदत के अनुसार सुबह तड़के ही आँख खुल गई ।" रेखा का स्वर किसी कदर लड़खड़ा रहा था"[1] किन्तु वह अपने मनोगत भावों को बड़ी कुशलता से छिपा गयी थी । बाद में प्रभाशंकर के जाने पर उसका अन्तर्द्वन्द्व पुन: प्रारम्भ हो जाता है ।

इसी प्रकार वर्मा जी के औपन्यासिक पात्र परिस्थित्यानुकूल भावों का अभिनय करने में बड़े पटु हैं और उनका अत्यंत सफल चित्रण वर्मा जी ने किया है ।

भावों को सदैव छिपा सकना किसी के लिए भी संभव नहीं, भले ही कोई कितना कुशल अभिनेता क्यों न हो; इसीलिए कभी-कभी वर्मा जी के पात्र लाख चाहने पर भी अपने भावावेग को रोक नहीं पाते । ऐसी स्थिति में वर्मा जी उनके भावों की एक झलक दिखलाकर उन्हें संयत अवस्था में ले आते हैं । कभी-कभी पात्रों के भावों की तीव्र गति के साथ वर्मा जी की लेखनी में भी तेजी आ जाती है और वह तेजी के साथ पात्रों के मुखांकित भाव, क्रिया-प्रतिक्रिया एवं आंगिक चेष्टाओं को व्यक्त करते चलते हैं, देखिए -

"पर गंगाप्रसाद अब अपने को पूरी तौर से खो चुका था । उसने झपटकर संतो को अपने आलिंगन-पाश में कस लिया । उसी के साथ एक तमाचा उसके गाल पर पड़ा और साथ ही संतो की दृढ़ता से भरी आवाज़ में सुनाई पड़ा, "मुझे छोड़ दीजिए, नहीं तो मैं अभी नौकर को बुलाती हूँ ।"

गंगाप्रसाद ने सहमकर संतो को छोड़ दिया । संतो की मुस्कराहट फिर वापस आ गयी + " बैठकर नाश्ता कर लीजिए ।"

1- रेखा- पृ० 112

गंगाप्रसाद लज्जित-सा चुपचाप सिर झुकाकर बैठ गया, पर उससे अब गया नहीं गया। संतो कुछ देर तक एकटक गंगाप्रसाद को देखती रही, फिर उसकी आँखों में आँसू आ गए," मुझे माफ करना। जी होता है इस हाथ को आग में झुलसा दूँ। तुम्हें मेरी सौगंध, नाश्ता कर लो, और मुझ पर नाराज़ मत होना। मैं बड़ी अभागिन हूँ, बड़ी अभागिन हूँ।" और यह कहते-कहते संतो की हिचकियाँ बँध गईं।"[1]

इस सम्पूर्ण दृश्य में पात्रों के हृदयगत भाव उनकी चेष्टाओं के माध्यम से ज्यों के त्यों प्रकट हो गये हैं, उनमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं है। पात्रों के कृत्रिम,अभिनययुक्त एवं प्रकृत सभी प्रकार के मनोभावों को वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है,जिससे पात्रों की चरित्रगत विशेषताएँ उभर सकी हैं।

अन्त: प्रेरणाओं का चित्रण

एक ही पात्र के दो विरोधी आचरण में संगति बिठालने के लिए पात्र की अंत:-प्रेरणाओं का चित्रण अत्यंत आवश्यक है, इसके अभाव में चरित्र-चित्रण अस्वाभाविक हो जाता है। कभी-कभी उपन्यासकार कथानक की माँग के अनुसार पात्रों के स्वभाव के प्रतिकूल आचरण तो करवा देता है, किन्तु उस आचरण के लिए कोई तर्कसंगत कारण न प्रस्तुत कर पाने की स्थिति में पात्र की सम्पूर्ण 'इमेज' छिन्न-भिन्न हो जाती है। वर्मा जी अपने प्रमुख व गौण सभी पात्रों के आचरण के प्रेरक तत्वों की ओर विभिन्न रीतियों से इंगित कर देते हैं। कभी वह स्वयं अपनी टिप्पणी में उसका संकेत कर देते हैं, कभी किसी दूसरे पात्र के माध्यम से उसे कहला देते हैं तो कभी स्वयं पात्र स्वाकारोक्ति के रूप में अपने आचरण की अंत:प्रेरणा को प्रकट कर देते हैं। कभी-कभी वर्मा अ०७० ७७ जी पात्रों के विरोधी आचरण की अंत:-प्रेरणाओं को स्पष्ट करने में चूक भी गये हैं, ऐसे स्थलों पर उनका चरित्र-चित्रण अस्वभाविक हो गया है।

'भूले बिसरे चित्र' में ब्रिटिश सरकार का अत्यंत राजभक्त सरकारी अफसर गंगाप्रसाद जो कांग्रेस की गतिविधियों और गाँधी जी का घोर विरोधी है, गाँधी जी के लिए अंग्रेज मिस्टर हैरिसन से लड़ बैठता है तो पाठक को एक आश्चर्य मिश्रित धक्का लगता है, किन्तु उपन्यासकार अपनी टिप्पणी एवं वे गंगाप्रसाद की स्वीकारोक्ति के द्वारा इस संघर्ष की

1- भूले बिसरे चित्र - पृ० 275

प्रेरणा का स्पष्टीकरण करके गंगाप्रसाद के आचरण के औचित्य को सिद्ध कर देता है। गंगाप्रसाद कमिश्नर से कहता है -" हुज़ूर, मैं उनके विचारों और उनकी राजनीति से सहमत न होते हुए भी उनके चरित्र और ईमानदारी की इज्ज़त तो कर ही सकता हूँ। मेरा ऐसा ख़याल है कि ब्रिटिश जाति इतनी अनुदार नहीं है कि वह लोगों को दूसरे के गुणों की इज्ज़त करने से रोके।"[1] इसके पश्चात् उपन्यासकार गंगाप्रसाद के गाँधी जी के प्रति भावनात्मक लगाव का कारण भी ~~स्पष्ट~~ स्पष्ट कर देता है -"रह-रहकर उसे यह अनुभव हो रहा था कि वह एक असभ्य और उदण्ड अंग्रेज़ से बुरी तरह पराजित हुआ, केवल इसलिए कि वह हिन्दुस्तानी है। उसकी इस पराजय का मूल कारण था ब्रिटिश सरकार की रंग-भेद की भावना। बिना जाने हुए वह भावनात्मक रूप से ज्ञानप्रकाश (कांग्रेस का सक्रिय कार्यकर्ता) के निकट आता जा रहा था।"[2] कालान्तर में यही गंगाप्रसाद सरकारी नौकरी से इस्तीफा देकर कांग्रेस ज्वाइन करने का निर्णय कर लेता है, यद्यपि वह ऐसा कर नहीं पाता।

इसी प्रकार 'सामर्थ्य और सीमा' में रतनचन्द्र मकोला रानी मानकुमारी के समक्ष 'हिन्द कॉपर्स' नामक कम्पनी की मैनेजिंग डाइरेक्टर बनने का प्रस्ताव रखते हैं और इसके लिए ~~बारह~~ बारह हजार प्रतिमास की तनख्वाह निश्चित करते हैं, तो रानी मानकुमारी क्रोध से काँपती चिल्ला पड़ती हैं -"कमीना कहीं का। तू मुझे इन रुपयों से खरीदना चाहता है।"[3] किन्तु मकोला के थोड़ा-सा समझाने पर ही वह पराजित हो उसे अपनी स्वीकृति दे देती है। उनके इस विरोधी आचरण में तारतम्य बिठालने के लिए उपन्यासकार अपनी टिप्पणी भी देता है और मेजर नाहरसिंह का कथन भी उनकी अंतःप्रेरणा की ओर संकेत करता है।[4] "रानी मानकुमारी के अंतस् में जीवन के नवीन मोड़ के लिए एक आकर्षण उत्पन्न हो गया था, इसीलिए वह मकोला के दुस्साहस को भूलकर उनकी बात स्वीकार कर लेती हैं।

'तीन वर्ष' में अजित लीला के प्रति आकर्षित हो गया है, ऐसा उसके आचरण, हावभाव एवं कथन से स्पष्ट दिखता है; किन्तु कभी-कभी लीला के प्रति उसका व्यवहार इतना विचित्र दिखने लगता है कि विश्वास नहीं होता कि वह लीला से प्रेम करता है। अजित लीला से ऐसी-ऐसी बातें कह बैठता है कि लीला परेशान हो उठती है, अजित का व्यवहार

1-	भूले बिसरे चित्र-	पृ० 539
2-	वही	पृ० 549
3-	सामर्थ्य और सीमा-	पृ० 244
4-	वही	पृ० 247

उसके लिए पहेली बना हुआ है, - वह कहती है -"अजित तुम आदमी हो कि शैतान ।------- अजित मैं तुम्हें नहीं समझ पा रही हूँ, तुम मेरे लिए एक पहेली हो ।--- तुम पशु हो -शैतान हो ।"[1] आदि-आदि अजित का सम्पूर्ण चरित्र उपन्यासकार की पर्याप्त सहानुभूति एवं संवेदना के साथ चित्रित हुआ है, इसीलिए वह प्रस्तुत उपन्यास का चरित्र-नायक प्रतीत होता है ; किन्तु अजित-लीला प्रसंग में अजित का 'रोल' कुछ अस्वाभाविक हो गया है । अतः जब रमेश और अविनाश उसे 'सिनिक'[2] कहते हैं, तो वह असत्य प्रतीत नहीं होता । इस दृष्टि से अजित का चरित्र कुछ अस्वाभाविक एवं 'एबनार्मल' दृष्टिगत होता है । इसका एकमात्र कारण यही है कि उपन्यासकार अजित के उक्त आचरण की कोई सशक्त स्पष्टता नहीं कर सका है ।

अन्तर्द्वन्द्व

जीवन की विषम परिस्थितियाँ मनुष्य को मानसिक द्वन्द्व एवं मनोमंथन के लिए विवश कर देती हैं । औपन्यासिक जगत् में भी पात्रों को यथार्थानुरूप चित्रित करने की दृष्टि से आवश्यक है कि उपन्यासकार पात्रों की मानसिक उथल-पुथल का चित्रण करता चले ।

वर्मा जी के उपन्यासों में मानसिक द्वन्द्व का नितांत अभाव है, यह नहीं कहा जा सकता, किन्तु उनके परवर्ती उपन्यासकारों ने जिस रूप में मनोजगत् के विश्लेषण को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है ; उस रूप में, उतनी अधिक मात्रा में अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण वर्मा जी के उपन्यासों में नहीं मिलता । वर्मा जी का प्रमुख उद्देश्य 'कथा कहने' और समाज के समुदाय-विशेष का चित्रण करने का होता है, उसमें प्रसंगवश जहाँ उन्हें मनोविश्लेषण की आवश्यकता सी दीखती है; वहीं उन्होंने उसका चित्रण किया है । किन्हीं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को आधार बनाकर वह पात्रों का चरित्र-चित्रण नहीं करते, वरन् व्यावहारिक अनुभव के आधार पर वह पात्रों के अन्तस् की उधेड़बुन को यथावश्यक चित्रित करते चलते हैं ।

वर्मा जी के प्रारंभिक उपन्यासों में भी पात्रों के अन्तर्वर्ती मनोविकारों का चित्रण मिलता है । 'चित्रलेखा' में बीजगुप्त, चित्रलेखा और कुमारगिरि, 'तीन वर्ष' में रमेश 'आखिरी दाँव' में रामेश्वर, चमेली और सेठ शिवकुमार 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में दयानाथ एवं रामनाथ के अन्तर्द्वन्द्व इस दृष्टि से देखे जा सकते हैं । वर्मा जी के परवर्ती उपन्यासों में

1- तीन वर्ष- पृ० 83,84,70

2- वही पृ० 79,75

पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व अधिक कुशलता से चित्रित किया गया है,पात्र जिस संघर्षपूर्ण स्थिति को मन में भोगते हैं, उसका चित्रांकन उपन्यासकार ने यथासम्भव किया है ।'सीधी सच्ची बातें' से एक उद्धरण द्रष्टव्य है - "अपने से उलझा हुआ वह चल रहा था और तेजी से एक के बाद एक विचार आ रहे थे उसके दिमाग में। वह कुलसुम से मिलने क्यों जा रहा है ? आखिर कुलसुम का उसके जीवन में स्थान ही क्या है ? वह कुलसुम से क्यों मिले ? कुलसुम में उसके प्रति कौन-सी भावना है जो उसने उसे बुलाया है ? मन-ही-मन जाने कितने प्रश्न कुलसुम के सम्बंध में कर डाले उसने अपने से, और सन्तोषजनक उत्तर उसे किसी प्रश्न का भी नहीं मिला । फिर उसने खुद अपने को टटोला । कुलसुम के प्रति उसमें कौन-सी भावना है ?"[1] जगतप्रकाश का यह मनोमंथन लगभग दो पृष्ठ तक चलता है, वह चलता जाता है और उसके मन में झाँककर उपन्यासकार उसकी मन:स्थिति का तदनुरूप चित्रण करता चलता है ।

वर्मा जी के उपन्यासों में अन्तर्द्वन्द्व -चित्रण की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को एक 'रिपोर्टर' की भाँति व्यक्त किया है । वह पाठक को यह अवसर नहीं देते कि वह स्वयं पात्रों की मन:स्थिति का अवलोकन प्रत्यक्षत: करे, वर्मा जी स्वयं सर्वज्ञाता की भाँति पात्र की मानसिक उधेड़बुन को देखते जाते हैं और उसका वर्णन करते चलते हैं । इस प्रकार पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व की 'सैकेन्ड हैण्ड नालेज' ही पाठक को मिल पाती है। इस दृष्टि से वर्मा जी के उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से नितांत भिन्न हैं क्योंकि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में 'आसन्नलेखत्व' से मुक्ति को पहली आवश्यकता माना गया है ।[2] इस सम्बंध में फ्लाबर्ट का कथन द्रष्टव्य है - "The artist should be in his work, like god in cerctain invisible and all powerful;he should be felt everywhere and seen nowhere."[3] वर्मा जी अपने उपन्यासों में प्राय: ऐसा नहीं कर पाये हैं, वे पात्रों के निजी सचिव की भाँति उनके साथ लगे रहते हैं । पात्रों और पाठकों के बीच सीधा सम्पर्क नहीं होने देते । इसका एकमात्र कारण यह है कि वर्मा जी के अधिकांश उपन्यास वर्णनात्मक प्रणाली में लिखे गये हैं अत: पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण के समय वह तत्काल पाठक और पात्र के बीच से हट नहीं सकते । वे जब आवश्यकता समझते हैं, तब स्वयं पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का वर्णन स्वयं करते चलते हैं ।

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 418

2- जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन-डा० देवराज उपाध्याय,पृ०

3. 'Writers on Writing-'Allen(Gustava Flaubert to Mile de Chautepia) Page-137

कई बार तो उपन्यासकार पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का उल्लेख करके ही आगे बढ़ जाता है। पात्रों की मानसिक अशांति की ओर संकेत-मर करके वह बाह्य दृश्य का अत्यंत सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत करता है जिससे हम पात्रों और परिस्थितियों को समझ पाते हैं, पात्रों के विकारों का भी बहुत कुछ अनुमान लगा लेते हैं, किन्तु ऐसी स्थिति में पात्रों के मनोजगत् का चित्रण शिथिल हो जाता है। इस कथन की पुष्टि के लिए कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं-

'सामर्थ्य और सीमा' में रानी मानकुमारी वासुदेव देवलंकर के प्रति आकृष्ट हो जाती हैं। जब देवलंकर उनके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखते हैं तो उनके मन में भयंकर अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो उठता है, ऐसा उनके कथनों से स्पष्ट प्रतीत होता है। दोनों के वार्तालाप से रानी मानकुमारी की डाँवाडोल स्थिति को उपन्यासकार ने बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है। उस सम्पूर्ण दृश्य को सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के द्वारा उपन्यासकार ने सजीव कर दिया है, किन्तु रानी मानकुमारी के अन्तर्द्वन्द्व को विस्तार से वर्णित न करके उसने उस ओर संकेत-मर कर दिया है -"और उद्वेलन रानी मानकुमारी के हृदय में भी आरम्भ हो गया था, एक प्रकार के मंथन के रूप में।"[1]

इसी प्रकार 'रेखा' शीर्षक उपन्यास में जब रेखा देवकी के पुत्र (प्रभाशंकर की नाजायज संतान) रामशंकर को देखती है तो उसके मन में युवा प्रभाशंकर की कल्पना को लेकर हलचल मच जाती है। उसके मन में प्रश्न उठता है कि क्या आत्मा से पृथक् शरीर की भी कोई माँग होती है? इस प्रश्न ने उसके मन में 'एक असह्य पीड़ा और दुश्चिन्ता'[2] भर दी थी - इसका उल्लेख तो वर्मा जी ने कर दिया और ऐसी द्वन्द्वात्मक मनःस्थिति में रेखा के क्रिया-कलाप को उन्होंने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है, किन्तु उसके अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित नहीं किया है। इस संदर्भ में डॉ० गणेशन का यह कथन सटीक प्रतीत होता है -"इनके (उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, देवेन्द्र सत्यार्थी, यज्ञदत्त, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, नागार्जुन, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण लाल आदि लेखकों के) विवरण सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा दृश्य उपस्थित करते हैं, बाह्य यथार्थ का बोध कराते हैं, किन्तु पात्रों के विकारों के क्रमिक विकास को उसकी पूर्ण तीक्ष्णता में व्यंजित नहीं करते।"[3]

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 264

2- रेखा- पृ० 83

3- हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन-डॉ० गणेशन, पृ० 134

निष्कर्षरूप में हम कह सकते हैं कि वर्मा जी के उपन्यासों में पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का, यथावश्यक रूप में, कभी चित्रण भी मिलता है और कभी उसके उल्लेख से ही काम निकाल लिया गया है। उन्होंने अन्तर्द्वन्द्व -चित्रण में पृष्ठ के पृष्ठ भले ही न भरे हों किन्तु विषम स्थितियों में पड़े पात्रों की संघर्षपूर्ण मन:स्थिति का आभास पाठक को अवश्य मिल गया है। इससे पात्रों के चरित्र पूर्ण तीक्ष्णता से व्यक्त न हो पाये हों, ऐसा हो सकता है ; किन्तु उसमें अस्वाभाविकता कदापि नहीं आने पायी है।

घटनाओं द्वारा चरित्र-चित्रण

वर्मा जी के उपन्यासों में ऐसी घटनाएँ विपुल मात्रा में प्राप्त होती हैं, जिनकी सर्जना पात्रों के शील-निरूपण के लिए की गयी है। नवीन घटनाएँ अनेक रीति से पात्रों के चरित्र को विकसित करने में सहायक बनती हैं। कभी आकस्मिक घटना में पात्र एक-दूसरे से मिलते हैं, एक -दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं ; जिससे उनके चरित्र का एक नवीन पक्ष उभरकर आता है। कभी-कभी घटनाओं के समावेश से पात्रों की असाधारण मन:स्थिति का प्रकाशन भी होता है और कभी उनकी चारित्रिक विशिष्टता को पाठक के सामने लाने के लिए उपन्यासकार घटनाओं की आयोजना करता है।

'सीधी सच्ची बातें' में जगतप्रकाश रामगढ़ की यात्रा पर जाते समय शिवदुलारी से परिचित होता है, किन्तु शिवदुलारी और बशीर अहमद की लड़ाई की घटना के द्वारा जगतप्रकाश शिवदुलारी के प्रति प्रथम बार आकृष्ट होता है। रामगढ़ में ही शिवदुलारी से शारीरिक सम्पर्क होने के पश्चात् जगतप्रकाश में कामकुण्ठा का प्रादुर्भाव होता है और इस प्रकार उसके जीवन का एक नवीन पृष्ठ खुलकर पाठक के समक्ष आता है।[1]

'थके पाँव' में केशव अपने पुत्र की बीमारी और अपनी अत्यंत गिरी हुई आर्थिक स्थिति से इतना परेशान है कि जीवन-भर अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध होकर भी एक-हज़ार रुपये की रिश्वत ले लेता है। इस घटना के द्वारा उपन्यासकार ने मध्यमवर्ग की विवशता का चित्रण तो किया ही है जिसमें अच्छे-अच्छे व्यक्ति भी अपना धर्म खो बैठते हैं, साथ ही केशव की अत्यंत कठिन मन:स्थिति का भी प्रकारान्तर से चित्रण कर दिया है।[2]

'भूले बिसरे चित्र' में होली के अवसर पर विधवा जैदेई के द्वारा ज्वालाप्रसाद के प्रति आत्मसमर्पण की घटना के द्वारा जैदेई की चारित्रिक विशिष्टता का द्योतन होता है, साथ ही ज्वालाप्रसाद की चारित्रिक दुर्बलता भी प्रकट हो जाती है।[3]

1- सीधी सच्ची बातें - पृ० 320, 2- थके पाँव - पृ० 141 से 144
3- भूले बिसरे चित्र - पृ० 100

कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण

वर्मा जी के उपन्यासों में कथोपकथन के द्वारा भी चरित्र-चित्रण का प्रयत्न किया गया है। उनके उपन्यास में कथोपकथन का समावेश अन्य कई उद्देश्यों से भी किया किया जाता है, इसकी चर्चा 'कथोपकथन' सम्बंधी अध्याय में विस्तार से की जायगी। चरित्र-विकास के लिए कथोपकथन का उपयोग किस प्रकार किया गया है, इसकी भी संक्षिप्त चर्चा उक्त अध्याय में की जायगी। यहाँ भी प्रसंगवश इस सम्बंध का विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है।

वर्मा जी के उपन्यासों के पात्र जब बिल्कुल अनौपचारिक होकर परस्पर वार्तालाप करते हैं, तो उनके संवादों के माध्यम से उनके चरित्र की कोई न कोई विशेषता अवश्य झलक उठती है। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में राधेश्याम भूमि-अवाप्ति के सम्बंध में जबरसिंह को खुश करना चाहते हैं, किन्तु सीधे-सीधे उन्हें रिश्वत देने की हिम्मत नहीं पड़ती; अत: वह धनवंतकुँवर के माध्यम से काम निकालने की योजना बनाते हैं। वह कहते हैं - "डरने की कोई बात नहीं, इतना समझ लो कि राधेश्याम का कोई वार खाली नहीं पड़ता। एक से एक पारसा और चरित्रवान लोगों को खरीदा है मैंने, रुपये की ताक़त बड़ी ज़बर्दस्त होती है। आखिर ठकुराइन ताल्लुक़दार खानदान की हैं, हीरे-जवाहरात से औरतों के मोह को मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"[1] राधेश्याम के इस कथन से उसकी अहम्मन्यता एवं चालाकी स्पष्ट हो जाती है।

इसी प्रकार पात्रों के अवचेतन में छिपे भावों की अभिव्यक्ति करवाने के लिए वर्माजी उन्हें आवेशपूर्ण स्थिति में डाल देते हैं, ऐसी स्थिति में पात्र ऐसी -ऐसी बातें भी कह जाते हैं, जिन्हें सामान्य स्थिति में प्रकट करना वे कभी उचित न समझते। 'चित्रलेखा' नामक उपन्यास में चित्रलेखा अपने वैभव और अपने प्रेमी बीजगुप्त को छोड़कर कुमारगिरि के पास दीक्षा लेने जाती है, किन्तु कुमारगिरि उसके अपूर्व सौन्दर्य के समक्ष स्वयं को अत्यंत कमजोर पाता है। वह योगी था और सामान्य स्थिति में वह कभी स्वीकार न करता कि वह किसी स्त्री से पराजित हो सकता है किन्तु चित्रलेखा की अनुनय-विनय पर वह एकदम क्रोधावेश में आकर चिल्ला पड़ता है - "नर्तकी! नहीं, यह असम्भव है! मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता।" उस समय कुमारगिरि अपनेआपको भूल गये- "तुम्हें दीक्षा देने के अर्थ होते हैं गिरना, नीचे गिरना! कहाँ? नीचे-ही-नीचे जहाँ अन्त ही नहीं है। मैं तुम्हें जानता हूँ और अपने को भी जानता

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं - पृ० 208

हूँ। थोर तुम्हें ऊपर उठाना कठिन है, स्वयं नीचे गिरना सरल है।[1] कुमारगिरि के इस आवेग-पूर्ण कथन में उसके अन्तस् में छिपी वासना अनावृत हो गयी है।

इसके विपरीत वर्मा जी के उपन्यासों में कुछ ऐसे भ्रामक कथोपकथन भी मिलते हैं, जिनके आधार पर पात्रों की चरित्रगत विशेषता का अनुमान लगाना स्वयं को भ्रम में डालना होगा। पात्रों के ऐसे भ्रामक संवाद से पाठक को भ्रम तो प्राय: नहीं होता क्योंकि उपन्यासकार की टिप्पणी से पात्रों की कृत्रिमता का पता चल जाता है, किन्तु उपन्यास के अन्य पात्र अवश्य धोखे में आ जाते हैं। 'चित्रलेखा' कुमारगिरि के प्रति आकृष्ट हो गयी है, अत: बीजगुप्त को विवाह के लिए प्रेरित करके उससे मुक्ति पाना चाहती है। वह मृत्युंजय से कहती है - आर्यश्रेष्ठ! तुम जो बात कह रहे हो, वह ठीक हो या न हो ; पर मुझे यह करना होगा, और यह करना होगा अपने लिए नहीं, वरन् बीजगुप्त के लिए --- इतना विश्वास रखो।"----- चित्रलेखा ने यशोधरा की ओर देखा--" और आर्यश्रेष्ठ ! तुम्हारी कन्या के लिए बीजगुप्त अच्छा वर है। यह विवाह सबसे सुन्दर होगा।" इतना कहकर चित्रलेखा ने बीजगुप्त से कहा- "बीजगुप्त ! तुम्हें यशोधरा-सी पत्नी मिलना असम्भव है आज से तुम्हारा और यशोधरा का सम्बंध पक्का हो गया।"[2] उपन्यास के इस स्थल तक पाठक को तो चित्रलेखा के इस नाटक का पूर्ण ज्ञान हो जाता है, किन्तु मृत्युंजय चित्रलेखा के इस भ्रमयुक्त संवाद से प्रभावित हो जाते हैं और कह उठते हैं - "और साथ ही नर्तकी चित्रलेखा का हृदय बहुत स्वच्छ है।"[3] कई बार कठिन स्थितियों से बचने के लिए भी पात्र बनावटी कथनों का आश्रय लेते हैं। ऐसे कथनों से उपन्यासकार इन पात्रों के बुद्धि-चातुर्य, सभा-कौशल एवं कई बार उनके मन के भय को व्यक्त कर देता है।

पात्रों के कथोपकथन के द्वारा वर्मा जी ने उनके व्यक्तिगत चरित्र को तो निरूपित किया ही है, इसके अतिरिक्त राजनीतिक बैठकों, साहित्यिक गोष्ठियों आदि के वार्तालाप या वाद-विवाद के माध्यम से उन्होंने वर्गगत चरित्रों का उद्घाटन भी किया है। 'सीधी-सच्ची बातें' में कामरेड चेतराम के मकान पर हुई कम्यूनिस्टों की मीटिंग में जगतप्रकाश, जसवन्त, जमील और चेतराम की बातचीत से द्वितीय विश्वयुद्ध के समय कम्यूनिस्टों के विचारों और उनके आन्तरिक मतभेद की अभिव्यक्ति हो जाती है।[4] इसी प्रकार 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में शंकरदेव प्रशांत के सम्मान में हुई गोष्ठी में साहित्यकारों, नेताओं और उद्योगपतियों की वर्गगत विशेषताएँ उनके कथोपकथन के द्वारा व्यक्त हो गयी हैं।[5]

1- चित्रलेखा- पृ० 85
2- ,, पृ० 80 , 3- वही - पृ० 80
4- सीधी सच्ची बातें- पृ० 385-86
5- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 164 से 169

अन्य ~~अपने~~ पात्रों द्वारा टीका-टिप्पणी :- वस्तु-जगत् की ही भाँति वर्मा जी के उपन्यासों के पात्र भी अपने सम्पर्क में आनेवाले लोगों के प्रति अपनी अच्छी-बुरी धारणाएँ रखते हैं जो समय-असमय प्रकट हुआ करती हैं। पात्रों के सम्बंध ऐसी धारणाएँ पात्रों को समझने में विशेष सहायक हुआ करती हैं, किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि वह पक्षपातपूर्ण ढंग से व्यक्त न की गयी हों।

पात्रों के सम्बंध में निष्पक्ष टीका-टिप्पणी करवाने के लिए वर्मा जी ने कई ढंग अपनाए हैं। कभी वह शत्रु के द्वारा प्रशंसा करवाते हैं, कभी मित्र द्वारा निंदा और कभी किसी ऐसे पात्र से टीका करवाते हैं जिनका आलोच्य पात्र से न लगाव होता है न शत्रुता। इस प्रकार की धारणाओं से जो चरित्र उभरता है उस पर पाठक को विश्वास करना ही पड़ता है।

'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में मार्कण्डेय दयानाथ का घनिष्ठ मित्र है, वह दयानाथ से उसकी कमजोरी बताते हुए कहता है -"दयानाथ! तुममें अहम्मन्यता है, कठोर और कुरूप; और लोग तुम्हारी अहम्मन्यता बर्दाश्त नहीं कर सकते! तुम्हारी हर हरकत में, तुम्हारे हर काम में, दूसरे के साथ तुम्हारे बर्ताव में, तुम्हारी अहम्मन्यता का जबर्दस्त पुट रहता है और अपनी उस अहम्मन्यता को तुम देख नहीं पाते, क्योंकि वह तुमसे पृथक् की चीज़ नहीं।"[1] उपन्यास के प्रारम्भ में ही प्रभानाथ की भी यही धारणा अपने बड़े भाई और पिता के लिए व्यक्त की गयी है - "दोनों में ही स्वामित्व ~~का~~ का भाव प्रबल था, किसी से दबना दोनों में से एक ने भी नहीं जाना।"[2] इतना ही नहीं स्वयं दयानाथ के कथनों से भी उसकी यह अहम्मन्यता साफ झलकती है।[3] इस प्रकार दयानाथ के चरित्र की यह विशेषता उसके मित्र की निंदा या आलोचना के द्वारा अधिक पुष्टता से व्यक्त हो गयी है।

'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में ही उपन्यासकार झगड़ू मिसिर और रामनाथ तिवारी की शत्रुता की ओर संकेत कर देता है। यद्यपि दयानाथ और मार्कण्डेय की मित्रता के कारण उन दोनों की शत्रुता धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी, तो भी उपन्यासकार स्पष्ट कर देता है कि अपनी-अपनी अकड़ और अहम्मन्यता के कारण दोनों अक्सर मुँह-दर-मुँह एक-दूसरे से गाली-गलौज कर लेते थे। इस लाग-डाँट के उपरांत भी जब झगड़ू मिसिर रामनाथ के सम्बंध में ~~कहते हैं~~ श्यामनाथ से कहते हैं -"जितनी तुम माँ अकल है, अगर उसकी आधी हूँ अकल तिवारी

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 424

2- वही पृ० 9

3 वही पृ० 424

जी माँ होत तो उइ आदमी नहीं हीरा हुई जात !"[1] अपने इस कथन के द्वारा झगड्डू रामनाथ के गुणों की ओर संकेत कर देते हैं। रामनाथ तिवारी में कहीं कुछ गुण हैं जिनसे प्रभावित होकर मनमोहन कहता है - "प्रभा ! तुम्हारी पिता की बातें सुनकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा, कि वह इतने गिरे हुए नहीं हैं जितना लोगों ने उन्हें समझ रखा है।"[2] काश कि हर एक आदमी ऐसा ही बन सकता,[3] मनमोहन का रामनाथ से बराबर सैद्धांतिक विरोध बना रहता है किन्तु जब वह पीछे पीछे उनकी प्रशंसा अपनी टिप्पणी के द्वारा करता है तो उसे सही मानना पड़ता है।

'सीधी सच्ची बातें' में कमलाकान्त का कुलसुम से परिचय मात्र है, उसके मन में कुलसुम के लिए कोई भावना नहीं है। जगतप्रकाश जब कुलसुम की चर्चा छेड़ता है तो कमलाकान्त कुलसुम के०वर्मा०छेड़ता०है०तो०कमलाकान्त के सम्बंध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहता है - "अजीब पागल-सी लड़की है यह कुलसुम कावसजी, लेकिन बड़ी जीवटवाली। बड़ा सबल व्यक्तित्व है इसका।"[4] थोड़ी देर पश्चात् वह फिर कहता है - "मेरी सलाह है कि इस कुलसुम से तुम दूर ही रहना। ऊपर से शिष्ट, शान्त और सौम्य, फिर यह सुन्दर भी है, लेकिन इसका भरोसा नहीं किया जा सकता, यह लड़की केवल अपने लिए जीवित है, अपने मन की है।"[5] कुलसुम के सम्बंध में कमलाकान्त के मत को पूर्णतया निष्पक्ष कहा जा सकता है। सम्पूर्ण उपन्यास में कुलसुम के चरित्र की कुछ और विशेषताएँ भी प्रकाश में आती हैं किन्तु कमलाकान्त की उपर्युक्त धारणा शब्दशः सत्य सिद्ध होती है।

इसके अतिरिक्त वर्मा जी के उपन्यासों में स्वीकारोक्ति के रूप में भी चरित्र-व्याख्या की गयी है। पात्र कभी-कभी अत्यंत अनौपचारिक वातावरण में अपने चरित्र की किसी विशिष्टता का विश्लेषण करने लग जाते हैं, जिससे पाठक की धारणा को बल मिलता है। 'प्रश्न और मरीचिका' में रूपा शर्मा नितांत आत्मीय क्षणों में उदय उपाध्याय के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देती है, जिससे उसका चरित्र बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। वह कहती है - "उदय, बुरा मान गए। नहीं बेटे, मुझसे बुरा मत मानना। मैं बड़ी अभागिन हूँ, बड़ी पापिन हूँ। मैं न जाने कब से शर्मा जी को धोखा दे रही हूँ। और शर्मा जी मुझ पर कितना

1-	टेढ़े मेढ़े रास्ते-	पृ0 151
2-	वही	पृ0 275
3	वही	पृ0 282
4-	सीधी सच्ची बातें-	पृ0 44
5-	वही	पृ0 45

विश्वास करते हैं, मुझसे कितना प्यार करते हैं। लेकिन बेटे, मैंने जान-बूझकर पाप नहीं किया, मुझसे पाप करवाए गये हैं। हरेक आदमी ने मुझे प्रलोभन दिया, मुझे खरीदा। और मैं बिकती गई। सच कहती हूँ जो जो आदमी मेरे साथ सोया है मैं उससे भयानक रूप से घृणा करती हूँ। अगर मेरा बस चले तो मैं इनमें से हरेक आदमी का गला घोंट दूँ।"[1]

'अन्य पात्रों द्वारा टीका-टिप्पणी' के अन्तर्गत वर्मा जी के उपन्यासों में मित्रों द्वारा प्रशंसा और निंदा दोनों का अधिकांशतया प्रयोग किया गया है, शत्रु द्वारा प्रशंसा के उदाहरण प्राय: कम मिलते हैं, इसकी अपेक्षा स्वीकारोक्ति के रूप में चरित्र-व्याख्या अधिक की गयी है।

कविता -गीत

वर्मा जी के उपन्यासों में कवि, गीतकार और शायर पात्रों की कमी नहीं है लेकिन बात-बात में अपनी तान छेड़ने वाला केवल 'अपने खिलौने' का दिलवर किशन 'जख्मी' ही है, उसे समय-असमय हर बात को अपनी शायरी से जोड़ने की आदत है। इस उपन्यास में 'जख्मी' की शायरी के द्वारा उसके मन के भाव प्रकट हो जाते हैं। कविता के द्वारा चरित्राभि-व्यक्ति को 'उद्धरण शैली' का नाम दिया गया है। इस प्रसंग में डॉ० बुध का मत द्रष्टव्य है -"इस शैली में पात्रों की तात्कालिक मन:स्थिति की व्यंजना होती है, क्योंकि इसमें उन्हें असामाजिक-अकथनीय भावनाओं की परोक्ष अभिव्यक्ति दूसरों के शब्दों में नि:शंक आत्माभि-व्यक्ति-की सुविधा रहती है। उद्धरणों से पात्र अपने व्यक्तिगत भावों को किंचित् अवैयक्तिक बनाकर प्रस्तुत कर सकते हैं। ----- द्रष्टव्य - शेखर, नदी के द्वीप, बूँद और समुद्र, परन्तु, द्राभा, सांचा, दिगम्बर, लोई का ताना, चलते-चलते, अपने खिलौने आदि।"[2] उद्धरण के अतिरिक्त अपनी या किसी दूसरे की कविता या गीत गुनगुनाते समय भी पात्रों की तात्कालिक मन:स्थिति का अवलोकन किया जा सकता है और पात्रों के विचार भी उनके द्वारा गाये गये गीतों के द्वारा व्यक्त हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि किसी का मुँह से सीटी बजाना, गुनगुनाना, कोई गीत गाना या कोई गद्यांश-पद्यांश उद्धृत करना अकारण नहीं होता, उसके द्वारा व्यक्ति की तात्कालिक मानसिक स्थिति या दृष्टिकोण का ज्ञापन हो जाता है।[3] वर्मा जी के उपन्यासों

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 66-67

2- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि-डा० सत्यपाल बुध, पृ० 101

3. 'Self mastery through Psycho-analysis' Eton Reprint-Fielding William J.Page-112
"We never hum or whistle aimless tunes.The tune selected,or the words to which it has been set,will be found to have direct or indirect bearing upon the individual's trend of mind or attitude at the time".

में अनेक ऐसे स्थल मिल जाते हैं जहाँ गीत या गीत की पंक्तियों से पात्रों की मानसिक स्थिति का अनुमान हो जाता है। `आखिरी दाँव` का किशोर राधा और चमेली की उपस्थिति में अपने जिस गीत का चयनकर सुनाता है, उससे उसकी अश्लील मनोवृत्ति स्पष्टतया व्यक्त हो जाती है -

> `सजनी तेरा अभिसार करूँ।
> जी में आता है मधुबाला हाला बन तुझको प्यार करूँ।
> है आज हृदय में कुछ कम्पन, है आज प्राण में कुछ क्रन्दन।
> इस यौवन का मैं चुम्बन से, आलिंगन से श्रृंगार करूँ।`[1]

इसी प्रकार `अपने खिलौने` में अशोक मीना को पीत-श्रृंगार में देख, उस पर कविता बनाता है -

> `नारी निसर्ग,उत्सर्ग
> उल्लास,व उच्छ्वास,
> तम में प्रकाश पीत कली गुलगेंदे की।[2]

इन शब्दों द्वारा अशोक मीना के प्रति अपनी मधुर भावना व्यक्त करना चाहता है। `सबहिं नचावत राम गोसाईं` में कवि झंझावात अपनी कविता सुनाता है -

> `चुप रहो! चुप रहो!
> मैं हूँ झंझावात!
> और तुम सब वाहियात-तुम सब बदज़ात-तुम सब कुरुफ़ात!`[3]

झंझावात की यह कविता काफी लम्बी चलती है। इस कविता में उसके विचार तो प्रकट होते ही हैं, साथ ही उसके संस्कारों और काव्य-क्षमता के स्तर की अभिव्यक्ति भी हो गयी है।

पत्र

पत्र सदैव हमारे भावों, दृष्टिकोण एवं हमारी मानसिक स्थिति का द्योतन करते हैं। उपन्यासों में भी पत्र द्वारा पात्रों के मनोभावों का प्रकाशन हो जाता है। वर्मा जी के उपन्यासों में पत्रों का उल्लेख अनेक बार होता है, कई बार पत्र द्वारा पात्रों के अन्तस् की

1- आखिरी दाँव- पृ० 118

2- अपने खिलौने- पृ० 13

3- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 169

भावनाएँ बाहर फूट पड़ती हैं। 'वह फिर नहीं आई' उपन्यास में श्यामला ज्ञानचन्द्र के नाम एक पत्र लिखती है, उस पत्र में उसके मन की एक-एक पर्त उपन्यासकार ने खोलकर रख दी है।[1] ऐसे अनेक उदाहरण वर्मा जी के उपन्यासों में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

'चित्रलेखा' उपन्यास में चित्रलेखा कुमारगिरि के प्रति आकृष्ट होकर कुमारगिरि की कुटी में चली जाती है और एक पत्र बीजगुप्त के लिए छोड़ जाती है, किन्तु इस पत्र में उसके मन की प्रतिच्छाया न मिलकर उसकी कपट-भावना का परिचय पाठक को मिल जाता है क्योंकि उपन्यासकार पहले ही स्पष्ट कर देता है कि चित्रलेखा त्याग और संयम का बहाना कर बीजगुप्त को छोड़ रही है। इसी प्रकार 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में कामरेड मारीसन का पत्र भी भ्रम में डाल देनेवाला है। परन्तु अधिकांशत: वर्मा जी के उपन्यासों में पत्रों के द्वारा पात्रों की मनोभावना व्यक्त हुई है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्मा जी ने चरित्र-चित्रण की विविध पद्धतियों एवं प्रणालियों का प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है जिससे उनकी चरित्र-सृष्टि में एकरसता नहीं आने पायी है। जीवन की भिन्न-भिन्न स्थितियों में उनके पात्र पृथक्-पृथक् रीति से विकास पाते रहे हैं, अत: उनकी सहजता एवं स्वाभाविकता प्राय: बनी रही है। अगले पृष्ठों में वर्मा जी के उपन्यासों के कुछ प्रमुख पात्रों का चरित्र-विवेचन किया जायेगा।

वर्मा जी के उपन्यासों के प्रमुख पात्रों का चरित्र-विवेचन

वर्मा जी के अब:पर्यन्त 14 उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, जिनमें प्रमुख और गौण सब मिलाकर लगभग 555 पात्रों का सृजन वर्मा जी ने किया है। इन पात्रों में वस्तु-जगत् के अनुरूप डाक्टर, वकील, जज, पुलिस अफसर, नेता, अध्यापक, किसान, जमींदार, ताल्लुकेदार, राजा, गृहिणी, वेश्या, नौकर आदि सबका समावेश हो गया है। इन पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये किसी कल्पना-जगत् के प्राणी न होकर हमारे अपने जीवन के इर्द-गिर्द रहनेवाले लोग हैं। इनमें कुछ व्यक्ति हैं तो कुछ वर्ग-प्रतिनिधि भी, किन्तु ये हमेशा हमें जाने पहचाने प्रतीत होते हैं। फिर भी वर्मा जी ने उन्हें जिस ढंग से अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है, उसने उन्हें स्मरणीय अवश्य बना दिया है। अपने कुशल शिल्प के परिणामस्वरूप उन्होंने हिन्दी उपन्यास जगत् को चित्रलेखा, बीजगुप्त, कुमारगिरि, रामनाथ तिवारी, छिनकी, गंगाप्रसाद,

---

1- वह फिर नहीं आई- पृ० 101-2

मेजर नाहरसिंह और जबरसिंह जैसे कुछ अमर चरित्रों का उपहार दिया है । उनके उपन्यासों के कुछ अत्यंत प्रमुख चरित्रों की व्याख्या प्रस्तुत है ।

चित्रलेखा :- 'चित्रलेखा' उपन्यास में चित्रलेखा का चरित्र ही सर्वाधिक जटिल एवं विचित्र है । चित्रलेखा अतुल रूप लावण्य से युक्त विदुषी, तर्कशीला नर्तकी है और उसे अपनी अद्भुत रूप एवं बुद्धि क्षमता का कहीं बड़ा गहरा अहं है । चित्रलेखा पाटलिपुत्र के जन-समुदाय पर अपना जादू चलाने की अभ्यस्त थी, किन्तु उसने अपने तक किसी को पहुँचने नहीं दिया था ; इसके पीछे उसका वैधव्य जनित संयम और रूप-गर्व दोनों ही काम करते थे । नृत्य करते-करते वह जिस बीजगुप्त की ओर आकर्षित हुई थी, उसके द्वारा दर्शन के लिए समय माँगने पर उसका दर्प स्पष्ट झलक उठता है - " नहीं, मैं व्यक्ति से नहीं मिलती । मैं केवल समुदाय के सामने आती हूँ ; व्यक्ति का मेरे जीवन से कोई सम्बंध नहीं ।"[1] चित्रलेखा लोगों को झुकाना जानती थी झुकना नहीं ; परन्तु बीजगुप्त के अधिक सबल व्यक्तित्व के आगे उसे झुकना ही पड़ा । बीजगुप्त उसके जीवन में आया और वह बीजगुप्त के प्रेम और ऐश्वर्य में निमग्न संसार के सुख को भोगने लगी । दूसरे को आकर्षित करने वाली रूपगर्विता नारी पुन: कुमारगिरि की ओर क्यों आकर्षित हुई ? प्रश्न उठता है । यहाँ भी उसके मूल में नारी मनोविज्ञान ही कारण है । स्त्री को अंधकार और माया कहकर कोई पुरुष उसकी अवहेलना कर जाय- यह उसे किस प्रकार सह्य हो सकता था । वह उसे अपने तर्क से पराजित करना चाहती है किन्तु स्वयं योगी के तप:पूत सौन्दर्य से प्रभावित हो जाती है । तदुपरांत सम्राट चंद्रगुप्त की सभा में कुमारगिरि का अनासक्ति -भाव उसके अन्तरतम् को उद्वेलित कर देता है और योगी के आह्वान पर उसका नृत्य रोक दियाजाना तो मानो उसके लिए चुनौती बन गया । वह अपनी प्रबल आत्मशक्ति के आधार पर योगी को पराजित कर देती है । इतना ही नहीं, कुमारगिरि की निवृत्ति को प्रवृत्ति की ओर लाने के लिए संकल्पित हो जाती है । जैसे ही कुमारगिरि चित्रलेखा की ओर आकर्षित ह अपने मार्ग से स्खलित होता है, चित्रलेखा का अहं संतुष्ट हो जाता है और कुमारगिरि के प्रेम-निवेदन का उत्तर इस प्रकार देती है - मैं जानती हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो, पर मैं तुमसे प्रेम नहीं करती । एक क्षण के लिए मेरी इच्छा तुम पर आधिपत्य जमाने की हुई थी, और मैंने उसका प्रयत्न किया । मैं सफल भी हुई, पर उससे क्या ? पुरुष पर आधिपत्य जमाने की इच्छा स्त्री के पुरुष से प्रेम की द्योतक नहीं है, प्रकृति ने स्त्री को शासन करने के लिए नहीं बनाया है । स्त्री शासित होने के लिए बनाई गयी है, आत्म-समर्पण के लिए । स्त्री अपने से निर्बल मनुष्य से प्रेम नहीं कर सकती, जिस पर उसने आधिपत्य जमा लिया, वह मनुष्य उसके

1- चित्रलेखा- पृ0 12

प्रेम का अधिकारी हो ही नहीं सकता ।"[1]

चित्रलेखा व्यभिचारिणी नहीं है और न ही 'अत्यंत छिछली विलासी नर्तकी' जैसा कि डॉ० सिंह का कथन है,[2] वरन् उसका ममत्व और सौन्दर्य बोध उसके अवचेतन में इतना प्रबल रूप धारण किए हुए हैं कि वह केवल कुमारगिरि को ही उसका शिकार नहीं बनाती, ब्रह्मचारी श्वेतांक भी उसका भाजन बनता है। चित्रलेखा स्वयं अनजाने ही ऐसा कर जाती है -"अनजाने में एक अबोध बालक को उसने अपने यौवन की मादकता का शिकार बनाया था, इस पर उसे दुख था।"[3]

पहले कहा जा चुका है कि चित्रलेखा अनिंद्य सुंदरी होने के साथ-साथ एक विदुषी नारी है, वह दूसरों को परास्त और आकर्षित करने के लिए अपने अकाट्य तर्कों के अस्त्र का प्रयोग भी करती है। सर्वप्रथम वह कुमारगिरि को अपनी इसी शक्ति से आकर्षित करती है।[4] उसका वैदुष्य मात्र शुष्क ज्ञान और तर्कजाल से मंडित नहीं है वरन् अपने चिंतन को संगीतमय मधुर स्वर में और कवित्वमय शैली में व्यक्त करने का वरदान भी उसे प्राप्त है।[5] अपनी व्यवहारकुशलता से समग्र स्थिति से निपटने में भी उसे महारत हासिल है, सामंत मृत्युंजय के आवास पर होनेवाले उत्सव की एक-एक घटना इस तथ्य की पुष्टि करती है।[6] अपने कृत्रिम हावभाव, कथन-उपकथन के द्वारा दूसरों को भ्रम में डाल देना और उस भ्रम को बराबर बनाए रखना उसके बाँए हाथ का खेल है, केवल एक ही स्थान पर वह न चाहते हुए भी आवेश में आकर अपने मन के विपरीत बात कह जाती है, उसके लिए वह पश्चाताप भी करती है।[7] किन्तु ऐसी सूक्ष्मदर्शिता एवं व्यवहारपटु नारी भी अंततः सामंत बीजगुप्त के अनन्य प्रेम के समक्ष परास्त होकर ही रहती है। उसकी समस्त अहम्मन्यता, वैदुष्य एवं वचन-चातुरी बीजगुप्त के सबल व्यक्तित्व के समक्ष उसके कथन और अश्रुपात के माध्यम से गलते प्रतीत होते हैं और वह बीजगुप्त के प्रति पूर्णरूपेण समर्पिता हो जाती है। उपन्यास के प्रारम्भ में की गयी उसकी उक्ति 'चित्रलेखा बहुत सोच-विचार के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि केवल एक व्यक्ति उसके जीवन में आ सकता है। और वह व्यक्ति बीजगुप्त है।"[8] सम्पूर्ण उपन्यास के अंत में चरितार्थ होता है, और चित्रलेखा

1- चित्रलेखा- पृ० 134
2- देखिए- उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा- डॉ० ब्रजनारायण सिंह-पृ० 91
3- चित्रलेखा- पृ० 26
4- ,, पृ० 32
5- ,, पृ० 24
6- ,, पृ० 71 से 86 81
7- ,, पृ० 65
8- ,, पृ० 13

के चरित्र की समस्त दुर्बलताओं के उपरांत उसके चरित्र को पाठक की दृष्टि में ऊपर उठा देती है ।

'चित्रलेखा' के अत्यंत जटिल चरित्र को उपन्यासकार ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है । उसके पूर्ववृत्त के विश्लेषण, मनोभावों के उद्घाटन, मुखांकित भावों के चित्रण एवं मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के वर्णन के द्वारा वर्मा जी ने बड़ी मनोवैज्ञानिकता के साथ चित्रलेखा के चरित्र की सृष्टि की है और इसी कारण रचना के लगभग 40 वर्ष बाद भी इस कृति का सौन्दर्य सराहा जाता है और 'चित्रलेखा' वर्मा जी की अमर सृष्टि के रूप में प्रतिष्ठित है ।

<u>कुमारगिरि</u> :- 'चित्रलेखा' उपन्यास में कुमारगिरि का प्रथम परिचय एक इन्द्रियजित, संयमशील नवयुवक योगी के रूप में होता है किन्तु उसके प्रथम दर्शन में उसका एक और रूप उजागर होता है, वह है उसका अहंकारी होना । वह महाप्रभु रत्नाम्बर के ऊपर अपनी उदारता और श्रेष्ठता का सिक्का तो जमा देता है किन्तु उनके जाने के बाद विशालदेव के प्रति उसकी उक्ति -" मैं तुम्हारा भ्रम निवारण कर दूँगा ; पर आज नहीं । भ्रम में पड़े हुए गुरु के शिष्य में भ्रमों का होना स्वाभाविक ही है; पर, देखता हूँ विशालदेव ! आचार्य रत्नाम्बर के विचार किसी अंश तक नास्तिकता की ओर झुके हुए हैं । मैं आस्तिक हूँ । इसके पहले कि तुम मुझसे कुछ सीख सको, तुम्हें दो बातों को मानना पड़ेगा ।"[1] उसकी अहंकारी वृत्ति की परिचायक है । कुमारगिरि के जिन गुणों का उल्लेख प्रथम परिचय में होता है - वे उसके क्रिया-कलाप द्वारा क्रमशः तिरोहित होते दीखते हैं ।

उसका दावा था कि उसने वासनाओं पर विजय पा ली है किन्तु वास्तविकता यह है कि वासनाओं को अपने पास आने ही नहीं देता था, इच्छाओं को अपने अन्दर उत्पन्न ही नहीं होने देता था । एक बार चित्रलेखा को देख उसमें इच्छा उत्पन्न हुई, फिर उसने उसे पाने के लिए अपने को नीचे गिराया, छल किया और चित्रलेखा के न मानने पर उसने अनुनय-विनय भी की ।[3] वह ममत्व को भी वशीभूत कर सकने में असफल हुआ । इस ओर संकेत करता हुआ बीजगुप्त कहता है -"कुमारगिरि और चित्रलेखा दोनों ही अहं-भाव से भरे हुए ममत्व के दास हैं और दोनों ही ममत्व की तुष्टि पर विश्वास रखते हैं ।"[2] अपनी जिस अलौकिक शक्ति के कारण कुमारगिरि ने ख्याति पा रखी थी - वह भी चित्रलेखा और मंत्री चाणक्य की आत्मशक्ति के आगे मात खा जाती है, वह चित्रलेखा से बुरी तरह पराजित होता है । अब

1- चित्रलेखा- पृ० 20

2- वही पृ० 135

3- चित्रलेखा- पृ० 53

रह जाती है संयम की बात, वहाँ भी चित्रलेखा का सम्पर्क उसमें घोर असंयम और वासना उत्पन्न कर देता है। वह समाधि नहीं लगा पाता, वासना के प्रबल आवेग से उसका चित्त चंचल हो जाता है। वासना का प्रहार उसे दीन और निर्बल तो बना ही देता है, साथ ही छल और प्रवंचना का सहारा लेने के कारण वह चित्रलेखा और पाठक दोनों की दृष्टि में पूर्णरूपेण गिर जाता है।

कुमारगिरि का चरित्र-चित्रण उपन्यासकार प्रारम्भ में 'ब्लैक कैरेक्टराइजेशन' अर्थात् घनीभूत पिंडित् चरित्र-चित्रण (इसे वर्मा जी ने स्वयं Brood Brushes की कला कहा है) की पद्धति से किया है। इस पद्धति का प्रयोग वर्मा जी ने अपने अन्य उपन्यासों में पुष्कल परिमाण में किया है[1] किन्तु अपने अन्य उपन्यासों में उन्होंने प्राय: पाठक को पात्रों के बारे आश्वस्त करने के लिए इस पद्धति का उपयोग किया है। कुमारगिरि का चित्रण करते समय उपन्यासकार इस पद्धति का प्रयोग दास्तोवस्की की भाँति पाठक को मानसिक आघात पहुँचाने के लिए करता है। प्रारम्भ में कुमारगिरि का परिचय प्राप्त कर पाठक समझता है कि उसने कुमारगिरि की रग-रग को पहचान लिया है और वह यह अनुमान करने लगता है कि अमुक परिस्थिति में उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, परन्तु कुमारगिरि के क्रिया-कलाप को देख उसे एक 'शॉक' लगता है। संभवत: इसी शॉक से पीड़ित हो एक आलोचक ने लिखा है - 'दूर से अच्छे दिखायी देनेवाले व्यक्ति में कितनी बुराइयाँ हो सकती हैं, यह बताने के लिए, सबलमना सुचरित्र व्यक्ति का परिस्थिति चक्र प्रेरित पतन दिखाने के लिए कुमारगिरि की अवतारणा की गयी है जिसका चित्रण भारतीय योगियों के व्यक्तित्व को मलिन रूप में उपस्थित करता है'।[2] कुमारगिरि का पतन दिखलाकर वर्मा जी ने न भारतीय योगियों को मलिन रूप में प्रस्तुत किया है और न ही भारतीय अध्यात्मवाद की खिल्ली उड़ायी है वरन् मानवीय रागद्वेष से आपूरित दिखलाकर उसे एक मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। अपने कथन की पुष्टि के लिए हम डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव का कथन उद्धृत कर सकते हैं - 'कुमारगिरि का चित्रलेखा के लिए मोह, उसके हृदय का द्वन्द्व, उसका स्खलन दिखलाकर लेखक ने उसे अतिमानव होने से बचा लिया है। वह वही है जो उसे होना चाहिए।'[3]

कुमारगिरि के चरित्र द्वारा उपन्यासकार ने निवृत्तिमार्गी अतिवादी दर्शन के प्रति अपनी अनास्था व्यक्त की है, जिससे यही ध्वनि निकलती है कि मनुष्य को अपनी इच्छाओं

1- पुष्टि के लिए देखिए - जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन-डा० देवराज उपाध्याय- पृष्ठ-84

2- आधुनिक साहित्य : विविध परिदृश्य, सं० सुन्दरलाल कथूरिया, निबंध लेखक-प्रेमप्रकाश गौतम-पृ0 123

3- हिन्दी उपन्यास-डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव. पृ0 231

को अनावश्यक रूप से दबाना नहीं चाहिए वरन् उनसे सहयोग करते हुए ऊपर उठने का यत्न करना चाहिए। बीजगुप्त इसी मार्ग पर चलते हुए अपने चरित्र को ऊर्ध्वगामी बनाता है।

बीजगुप्त :- कुमारगिरि से ठीक विपरीत बीजगुप्त का परिचय महाप्रभु रत्नाम्बर एक यौवन की उमंग से भरे, ऐश्वर्यवान्, विलासी एवं भोगी सामंत के रूप में करवाते हैं। वैभव और उल्लास की तरंगों में केलि करनेवाले युवक बीजगुप्त के हृदय में समस्त वासनाओं का निवास था[1] यह तथ्य उपन्यास में बीजगुप्त के प्रथम दर्शन में पूर्णतया सत्य सिद्ध होता है किन्तु जैसे-जैसे पाठक बीजगुप्त की क्रिया-प्रतिक्रिया से परिचित होता जाता है, बीजगुप्त अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ऊपर-ऊपर उठता जाता है।

बीजगुप्त में प्रथम दृष्टि में ही चित्रलेखा के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है, किन्तु वह अपने स्वभाभिमान की बलि ~~चढ़कर~~ चढ़ाकर चित्रलेखा को पाने का यत्न नहीं करता, एक कामुक की भाँति उसकी चिरौरी न करके बीजगुप्त चित्रलेखा को दो टूक उत्तर देकर चला आता है, अपने व्यक्तित्व की उपेक्षा उसे सहन नहीं, वह कहता है -"व्यक्तित्व जीवन में प्रधान है और व्यक्तित्व से ही समुदाय बनता है। जब व्यक्ति वर्जित है, तो उस व्यक्ति को समुदाय का भाग बनना अपना ही अपमान करना है।"[2] एकबार चित्रलेखा से सम्बंध स्थापित होने पर वह उसे पत्नी की भाँति ही उच्च सम्मान देता है, वेश्या ~~नर्तकी~~ या नर्तकी के रूप में उसे काम-वासना की तृप्ति का साधन नहीं मान बैठता। वह सबके सामने गम्भीरतापूर्वक इसे स्वीकार करते हुए कहता है -"चित्रलेखा का पाणिग्रहण मैंने शास्त्रानुसार नहीं किया है, और समाज के नियमों के अनुसार कर भी नहीं सकता हूँ, फिर भी मेरा और चित्रलेखा का सम्बंध पति और पत्नी का-सा ~~केवल~~ है। मैं प्रेम में विश्वास करता हूँ।"[3] बीजगुप्त का प्रेम इतना ~~स्व~~ स्वच्छ और निर्मल है कि वह चित्रलेखा के हृदय में कुमारगिरि के प्रति आकर्षण की छाया का क्षणिक आभास पाकर ही अशांत हो उठता है और अनुभव करता है कि उसके जीवन पर दु:ख के बादल मँडरा रहे हैं किन्तु वह इतना असहिष्णु नहीं कि इसके लिए चित्रलेखा की भर्त्सना करे। उसमें एक सहृदय व्यक्ति की उदारता विद्यमान है। चित्रलेखा के हाथों मदिरा पीते देख वह श्वेतांक पर अविश्वास नहीं करता, वरन् बड़े भाई के समान उसे कर्तव्याकर्तव्य का विचार करने का सुझाव देता है -"रही मेरे साथ विश्वासघात करने की बात, वह श्वेतांक तुम भूलते हो। तुमने अभी संसार में प्रवेश किया है, तुम संसार के अनुभवों से रहित हो। न जाने कितनी

1- चित्रलेखा- पृ० 7

2- वही- पृ० 12

3- वही- पृ० 77

बार तुम्हें अनुभव की परीक्षा की कसौटी पर चढ़ना पड़ेगा, उस समय तुम्हें कर्तव्याकर्तव्य का विचार रखना पड़ेगा। इच्छाएँ प्रबल रूप धारण करके तुम्हें सतावेंगी और तुम्हें उनका दमन करना पड़ेगा। यहीं पर तुम्हारी आत्मशक्ति की परीक्षा होगी। विजय और पराजय का क्षेत्र संसार है, निर्जन नहीं है।"[1] ऐसा नहीं कि कर्तव्याकर्तव्य पर विचार करने की शिक्षा वह श्वेतांक को देकर 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की उक्ति चरितार्थ करता हो, वरन् वह स्वयं भी उस पर अमल करता है। चित्रलेखा से निराश होकर ब वह एक बार यशोधरा से विवाह करने का निश्चय कर लेता है, किन्तु श्वेतांक द्वारा यह बताने पर, कि वह यशोधरा से प्रेम करता है और उसका पाणिग्रहण करना चाहता है, वह बड़े विवेकपूर्ण ढंग से परिस्थिति पर विचार करता है और अपने कर्तव्य की ओर उन्मुख होता है -" मैं अन्याय कर रहा हूँ, दूसरों के साथ और स्वयं अपने साथ भी। हमारे हिस्से में सुख और दु:ख दोनों ही पड़े हैं - हमारा कर्तव्य है कि हम दोनों को ही साहस-पूर्वक भोगें।"[2] इस निश्चय के पश्चात् वह यशोधरा के साथ विवाह करने का विचार त्याग देता है, इतना ही नहीं, अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति और पदवी श्वेतांक को दान देकर वह श्वेतांक का विवाह यशोधरा से करवा देता है और स्वयं देश-पर्यटन के लिए निकलने का निश्चय कर लेता है। उसके त्याग और उदारता की पराकाष्ठा तब दिखती है, जब वह चित्रलेखा के समस्त अपराधों को क्षमा करके पुन: स्वीकार कर लेता है।

बीजगुप्त लेखक के जीवन-दर्शन का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है और इतने आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है कि एक आलोचक ने उसे 'अतिमानव' की संज्ञा से भी अभिहित किया है,[3] परन्तु हमारे विचार से बीजगुप्त का प्रेम और त्याग समन्वित चरित्र असंभव और अस्वाभाविक कदापि नहीं। उपन्यासकार ने जिस ढंग से उसका क्रमिक विकास दिखलाया है, उससे उसकी उदारता और मानवता अप्राकृतिक प्रतीत नहीं होती। इस प्रसंग में डॉ० उषा सक्सेना का मत भी द्रष्टव्य है - यह उपन्यासकार के शिल्प की ही विशेषता है कि चरित्र की महानता नैसर्गिक तथा अकृत्रिम प्रतीत होती है। यही नहीं, कुमारगिरि योगी की वासना का शिकार चित्रलेखा को भी वह क्षमा प्रदान कर देता है। विलास सुरा-पंक में निमग्न आत्मा कमल की महानता तथा दिव्यता का यह चित्र स्वाभाविक भव्य तथा अनुपम है।"[4]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'चित्रलेखा' के तीनों प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण उपन्यासकार ने अपनी सम्पूर्ण क्षमता से किया है। और नाटकीय और प्रत्यक्ष शैली

1- चित्रलेखा- पृ० 27
2- वही- पृ० 165
3- हिन्दी उपन्यास:उद्भव और विकास- डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० 388
4- हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास-डॉ० उषा सक्सेना-पृ० 156

के समुचित समन्वय के कारण उसमें अद्भुत द्युति आ गयी है। इस तथ्य को विद्वानों ने मुक्त-कंठ से स्वीकार किया है।[1] संभवत: चरित्र-चित्रण की इस महती सफलता को दृष्टि में रखकर ही एक आलोचक ने 'चित्रलेखा' को 'चरित्र-प्रधान उपन्यास'[2] कह दिया है।

<u>अजित</u> :- 'तीन वर्ष' का अजित एक राजा का पुत्र है। उसका उपन्यास में प्रवेश बड़े रोचक ढंग से हुआ है, वह विश्वविद्यालय के कक्ष में एक चुलबुले छात्र के रूप में दिखता है और अपने को 'अच्छे खासे अपटुडेट यानी पक्के आवारा'[3] के रूप में प्रस्तुत करता है किन्तु उपन्यास के अर्द्धांश की समाप्ति पर वह अत्यंत उदार एवं विवेकशील युवक के रूप में प्रतिष्ठित होता है। विपुल वैभव में पलते हुए वह उसमें लिप्त नहीं हुआ है वरन् रमेश को अपने जैसी सुख-सुविधा देकर अपनी उदारता तो दिखाता ही है, साथ ही वैभव के प्रति अपनी तटस्थता भी व्यक्त करता है।

अजित ने अपनी युवावस्था में ही विभिन्न देशों और स्तर के व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर तरह-तरह के अनुभव प्राप्त कर लिये थे, अधिक अनुभवों के लिए उसमें जिज्ञासा थी ; और इसीलिए वह निर्लिप्त होकर जीवन के हर क्षण को जी लेना चाहता था। जीवन ने उसे भोगी न बनाकर एक स्वस्थ चिंतन की दृष्टि प्रदान की थी - इसीलिए वह बाहर से पाश्चात्य सभ्यता में रंगा दिखकर भी अन्दर से भारतीय आदर्शों को माननेवाला दार्शनिक सिद्ध होता है। वर्मा जी ने 'चित्रलेखा' के बीजगुप्त और योगी कुमारगिरि के समन्वय से अजित का निर्माण किया है। अजित बीजगुप्त की भाँति वर्तमान जीवन को भरपूर जी लेने का पक्षपाती है और इसीलिए प्रभा और लीला से उन्मुक्त व्यवहार करता है। किन्तु साथ ही वह योगी कुमारगिरि की तरह स्त्री के सम्बंध में पुराणपंथी धारणाओं से आबद्ध है। वह स्त्री को मानसिक एवं शारीरिक स्तर पर दुर्बल मानता है और इसीलिए उसे अधिकार की वस्तु, गुलाम और पुरुष की सम्पत्ति समझता है।[4]

1- (अ) "यद्यपि पात्र लेखक की विचार सरणि के प्रवाहक हैं किन्तु उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व है जो स्यात् हमेशा-हमेशा के लिए पाठक के मनश्-पटल पर अंकित हो जाता है।" - हिन्दी के सात युगान्तकारी उपन्यास-रामप्रकाश कपूर, पृ० ९8
(आ) "भगवतीचरण वर्मा ने चित्रलेखा में सभी पात्रों के मानसिक पक्षों का सुंदर चित्रण किया है।- हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन-डॉ० गणेशन, पृ० 79

2- हिन्दी उपन्यास-डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव-पृ० 231

3- तीन वर्ष- पृ० 9

4- वही- पृ० 101

वह नारी के प्रति आकर्षित अवश्य होता है, लीला के प्रति उसकी भावुकता इस तथ्य की परिचायक है ; किन्तु उसके अनुभवों ने उसे अजित बने रहने का पाठ सिखाया है । वह कहता है -" मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, मैं तुमसे उतना ही प्रेम करता हूँ जितना कोई भी व्यक्ति कर सकता है । पर मैं पागल नहीं हूँ । मेरा मस्तिष्क विकृत नहीं है, मेरे लिए प्रेम जीवन-मरण की समस्या नहीं है ।"[1]

अजित अपने सबल व्यक्तित्व के प्रति सजग है । वह कहता है -"मैं व्यक्तित्व और ममत्व को बनाए रहने में विश्वास करता हूँ-- यदि मैंने अपना ममत्व ही खो दिया, तो फिर मैं कहाँ रहा ।"[2] अपने ममत्व को संतुष्ट करने में उसे सुख का अनुभव होता है, वह रमेश की सहायता अपने अहं की तुष्टि के लिए करता है -"मैं बड़ा स्वार्थी हूँ । मैं जो कुछ करता हूँ,वह अपने-आप को प्रसन्न करने के लिए करता हूँ । तुम्हें सुखी बनाने में मैं सुखी होता हूँ,इसलिए मैं तुम्हें सुखी बनाता हूँ ।"[3] स्पष्ट हैकि अजित का अहं भाव दूसरों के लिए पीड़ा दायक नहीं,वरन् दूसरों के हित की रक्षा करते हुए स्वयं को सुखी बनानेवाला है । इसीलिए उसमें परोपकार और उदारता की भावना दिखती है ।

अजित की सम्पत्ति विषयक धारणा दार्शनिक पीठिका पर आधारित है और इसी-लिए वह इस सम्बंध में भी अत्यधिक उदार दृष्टिकोण रखता है । रमेश द्वारा आर्थिक सहायता का विरोध किए जाने पर वह कहता है -"तुम्हें मेरा धन लेने में संकोच होता है, केवल इसलिए कि तुम इस धन को अपना नहीं समझते ; पर यह धन मेरा भी तो नहीं है । मैंने भी तो इसे उपार्जित नहीं किया । मुझे अपने पिता से मिला ; पर पिता को कहाँ से मिला ? मेरे पिता के पिता को कहाँ से मिला ? यह एक लम्बा चक्कर है, जिसे कोई नहीं सुलझा सकता-------- मैं तो इसे केवल विधि का विधान समझता हूँ । मैं तो यह जानता हूँ कि मैंने एक राजा के यहां इसलिए जन्म लिया कि मैं इस धन को भोगूँ । जिस भगवान ने मुझे राजा के यहाँ जन्म दिया, उसने मुझे छोटा भाई क्यों बनाया ? यदि मैं बड़ा भाई होता, तो राजा ही होता । इसका भी उत्तर मेरे पास है । मुझे केवल इतना ही भोगना है, मेरे बड़े भाई को भगवान ने अधिक वैभव दिया है । बस ! तुम क्यों चिन्ता करते हो ? यह धन न मेरा व है और न तुम्हारा है-- हम सबको एक दूसरा ही मालिक यह सब देता है, हम-तुम तो केवल साधन हैं ।"[4] अपनी इसी

1- तीन वर्ष- पृ0 70

2- वही- पृ0 70

3- वही- पृ0 94

4- वही- पृ0 93

धारणा के कारण वह प्रभा को हेय दृष्टि से देखता है क्योंकि प्रभा की दृष्टि में व्यक्तित्व का महत्व नहीं है वह रुपये-पैसे को अधिक महत्व देती है और अजित व्यक्तित्व को ही व्यक्ति का धन समझता है। इसीलिए रमेश को धनी समझता है, उससे प्रभावित होता है।

अजित की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपने विचारों में बिल्कुल सुलझा हुआ है और इसीलिए अपनी प्रत्येक बात को बड़ी स्पष्ट से और सरल शब्दों में व्यक्त कर देता है। इस स्पष्टवादिता के कारण उसमें बच्चों की -सी निश्छलता है। इसी निष्कपट आचरण के कारण ही उपन्यास के अन्य पात्र 'उसे पूर्णतया समझ न पाने', उसके 'एक पहेली' होने पर भी उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं।

इतने गुणों के होने पर भी उसके अन्तर्बाह्य स्वरूप में पर्याप्त भिन्नता है और इसीलिए कभी-कभी उसका आचरण अस्वाभाविक और असंगत प्रतीत होने लगता है, किन्तु इसी असंगति में ही उसका आकर्षण निहित है। वह एक जटिल चरित्र है और उसे समझने के लिए ही उपन्यास के अन्य पात्र और पाठक प्रयत्नशील रहते हैं। इस रूप में अजित की कल्पना को प्रशंसनीय कहा जा सकता है।

अजित के सम्बंध में प्राय: आलोचकों ने यह आरोप लगाया है कि अजित रमेश का भाग्य-निर्माता बन बैठा है और रमेश के साथ वह अभिभावक बनकर आता है।[1] यह आरोप ऊपर से सत्य दिखते हुए भी उचित नहीं है। अजित रमेश को अपने अनुभवों के आधार पर मित्रतावश सजग करता है, उसे अभिभावक की भाँति अपनी बात मानने के लिए बाध्य वह कभी नहीं करता। उसने अपने व्यक्तित्व से रमेश को प्रभावित किया है और रमेश इसी आकर्षण के कारण अजित की उपेक्षा नहीं कर पाता किन्तु वह अजित के निर्देश से परिचालित तो कभी नहीं दिखता। अत: अजित का रमेश का भाग्य-निर्माता होने का आरोप समीचीन प्रतीत नहीं होता।

अजित के चरित्र-निर्माण के लिए वर्मा जी ने परिचयात्मक विवरण और नाटकीय प्रणाली का प्रयोग किया है। आन्तरिक विश्लेषण की स्थितियाँ अजित के औपन्यासिक-जीवन में नगण्य हैं। उसके चरित्र का उद्घाटन अधिकांशत: अन्य पात्रों के कथोपकथन और अजित

1- देखिए -'हिन्दी उपन्यास'- डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव- पृ० 234 तथा भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा से सबहिं नचावत राम गोसाईं तक) डॉ० कुसुम वार्ष्णेय- पृ० 90

की स्वीकारोक्ति के रूप में हुआ है। इसके अतिरिक्त रमेश द्वारा पिस्तौल चलाये जाने की आवेगज घटना के द्वारा भी अजित का चरित्रोद्घाटन हुआ है।

रामनाथ :- 'टेढ़ेमेढ़े रास्ते' के पण्डित रामनाथ तिवारी बानापुर के ताल्लुकेदार एवं ऑनरेरी मजिस्ट्रेट हैं और उनके इस उच्चकुलीन व्यक्तित्व में जमींदार वर्ग की अधिकांश विशेषताओं का समावेश हो गया है किन्तु इसी कारण उन्हें 'टाइप' पात्र नहीं कहा जा सकता। उनकी कुछ व्यक्तिगत विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर वह जमींदारों की पंक्ति के एक जमींदार न होकर अपनी अलग पहचान बना सके हैं, अपनी अमिट छाप छोड़ सके हैं।

उपन्यास के प्रारम्भ में रामनाथ एक रोबीले ताल्लुकेदार के रूप में पाठक के सामने आते हैं और उनकी यह आकृति उपन्यास के अंत तक बनी रहती है किन्तु अपनी विषम परिस्थितियों के समक्ष न झुकने के लिए संघर्षशील रहते हुए भी वह एकाएक छिन्न-भिन्न हो जाती है। रामनाथ तीनों पुत्रों को स्वयं अपने हाथों गँवाकर अपने पौत्र के समक्ष आत्मसमर्पण कर देते हैं। सम्पूर्ण उपन्यास पर छाया हुआ रामनाथ का प्रबल अहम्मन्यता से भरा व्यक्तित्व एक छोटे-से बच्चे के सहारे की आकांक्षा करने लगता है। वह अवधेश को छाती से चिपटाते हुए कह उठते हैं - "बेटा-- बेटा इस बूढ़े का साथ मत छोड़ना।"[1]

अंतिम पृष्ठ की इस स्थिति में पहुँचने तक रामनाथ को अनेक मानसिक प्रभंजनों का सामना करना पड़ता है किन्तु वह अपनी मानसिक दुर्बलता को किसी पर प्रकट नहीं होने देते। उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी शक्ति (जिसे अंत में रामनाथ अपनी दुर्बलता के रूप में स्वीकार करते हैं) उनकी प्रबल अहम्मन्यता है। यही अहम्मन्यता उन्हें बार-बार टूटने से बचाती है। अपने पुत्रों की राजनीतिक विचारधारा और उनकी गतिविधियाँ उन्हें बार-बार सोचने पर विवश करती हैं, किन्तु कुलीन मर्यादा में छिपी उनकी अहम्मन्यता उन्हें रोकती है उसके लिए उनकी प्रकाण्ड विद्वत्ता अकाट्य तर्क-जाल बुनकर निमित्त बन जाती है।

सर्वप्रथम जब दयानाथ का साथ देने के लिए अपने निश्चय को व्यक्त करता है, तो वह क्रोधावेश से तड़प उठते हैं और चौबीस घंटे का समय देकर कांग्रेस को छोड़ने की चुनौती देते हैं, किन्तु उनके मन में कोई भयंकर बवंडर उठ खड़ा हुआ है, इसकी सूचना प्रभानाथ के इस कथन से मिल जाती है - "बड़के भइया! कल ददुआ बड़े नाराज थे। रात को उन्होंने खाना भी

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 500

नहीं खाया ।"[1] तदुपरांत दयानाथ द्वारा कांग्रेस में बने रहने के अटल निश्चय को व्यक्त करने पर दयानाथ को परित्याग का आदेश सुना देते हैं किन्तु दयानाथ की कार चलने की आवाज़ सुनकर ही उनके स्तब्ध अवचेतन को ठेस पहुँचती है और क्षण भर के लिए उनका अहंभाव न जाने कहाँ तिरोहित हो जाता है और वह करुण स्वर में कह उठते हैं, -"प्रभा-- देखो वह जा रहा है।उसे बुलाओ--- जल्दी बुलाओ !"[2] किन्तु बहुत जल्दी ही उनकी अहम्मन्यता उनकी भावुकता को आक्रांत कर लेती है और वह एक-एक शब्द पर जोर देते हुए, मानो अपनी करुणा और भावुकता का गला घोंटते हुए कहते हैं -"सर उठाकर, गर्व के साथ, रुपयों को ठुकराकर, ममता को तोड़कर ! मुझसे लड़ने,मुझे मिटाने चल दिया ! इतना घमण्ड,इतनी अहम्मन्यता-- इतनी अहम्मन्यता,इतना घमण्ड !"

--" इतना घमण्ड । तो फिर भुगते -- अच्छी तरह से भुगते ! वह समझता है कि मैं झुकूँगा ।"[3]स्पष्ट है कि रामनाथ अपनी अहम्मन्यता के समक्ष किसी के सिद्धान्त,किसी के अधिकार और अहं को सहन नहीं कर सकते ।

एक बार नहीं, उनकी अहम्मन्यता को क्रमश: दयानाथ की पत्नी,[4] ग्रामीण युवक परमेश्वर,[5] विश्वम्भरदयाल[6] और वीणा[7] से परास्त होना पड़ता है और वह तड़प उठते हैं। उन्हें समझ में नहीं आता कि आज के युग के लोगों में इतनी मर्यादाविहीनता क्यों आती जा रही है । वह 'नये' से समझौता करने का कई बार यत्न करते हैं, किन्तु अंतत: उनका अहं विजयी होता है । लेकिन उन्हें यह अनुभव अवश्य होता है कि वह भीतर-भीतर ही कहीं कमजोर होते जा रहे हैं और क्रांतिकारियों द्वारा डकैती के सिलसिले में प्रभानाथ की गिरफ्-तारी के बाद तो वह बहुत भयभीत हो उठते हैं कि कहीं हार न जायँ,वे ईश्वर के समक्ष आत्मनिवेदन करते हैं -" हे भगवान् ! क्या मुझे पराजित होना पड़ेगा ? तुम चाहते क्या हो? तुम्हारे विरुद्ध लड़ना ! -- इतना बल मुझमें नहीं है ! मुझे बल दो मेरे भगवान् ।"[8] और

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 29
2- वही- पृ० 34
3- वही- पृ० 35
4- वही- पृ० 139-40
5- वही- पृ० 345
6- वही- पृ० 405
7- वही- पृ० 454
8- वही- पृ० 439

प्रभानाथ की दाह-क्रिया के बाद तो उनकी क्षीण चेतना आत्म-समर्पण के लिए पूर्णत: तत्पर हो जाती है, किन्तु आत्मचिंतन के पश्चात् वह अपने अन्दर की भावना से लड़ने को कटिबद्ध हो जाते हैं -"उनके अन्दरवाली गुरुता और अहम्मन्यता करवटें बदल रही थीं। सब कुछ खोकर भी लड़ना है, बिना झुके हुए -- अन्त समय तक। जब तक वे अपने अन्दर से पराजित नहीं होते, तब तक वे विजयी हैं; और अपने अन्दर विजयी होना अथवा पराजित होना, यह उनके वश में था। वे मुस्करा पड़े"[1] और ऐसी स्थिति में वह अपने तीसरे पुत्र को भी त्याग देने की शक्ति अर्जित कर लेते हैं और बड़े पुत्र की कायरता की कड़े स्वर में भर्त्सना करने का साहस भी बटोर लेते हैं किन्तु तीनों पुत्रों को गँवाकर एकाएक बिल्कुल टूट जाते हैं और पौत्र के समक्ष अपना हृदय पूर्णतया खोलकर रख देते हैं।

अपनी अहम्मन्यता के अतिरिक्त रामनाथ को सबसे प्रिय वस्तु अपना कुल-गौरव है। इसीलिए वह राजेश्वरी को समझाने के लिए स्वयं जाते हैं - यह जानते हुए कि वह उस घर में नहीं आना चाहती जहाँ उसका पति त्याज्य है। इसीलिए वह दयानाथ के कांग्रेस छोड़ने को कायरता समझते हैं और कायरता को कुल कलंक समझते हैं।

वे प्रकाण्ड विद्वान् हैं, इसलिए उनके तर्क अकाट्य और सारयुक्त होते हैं, अपनी बात को अत्यधिक शक्तिशाली ढंग से रखने में वह दक्ष हैं, अत: उनके सभी विरोधी उनके समक्ष निरुत्तर हो जाते हैं। कांग्रेस की असफलता के लिए, अहिंसा के सिद्धान्त को कायरतापूर्ण एवं अव्यावहारिक सिद्ध करने के लिए उनके पास अत्यंत सटीक तर्क विद्यमान हैं। फिर भी उनके चरित्र की विशेषता है कि वह कांग्रेस और नीतियों का विरोध करने पर भी गांधी जी को सम्पूर्ण सम्मान की दृष्टि से देख सकते हैं। इसी प्रकार झगड़ू मिसिर से पैतृक शत्रुता के होते हुए उन्हें पूर्ण सम्मान प्रदान करते हैं। वह अपने मैनेजर को इसीलिए बर्खास्त कर देते हैं कि उसने झगड़ू का अपमान किया किन्तु गाँव के अन्य लोगों को वह तनिक भी छूट नहीं देना चाहते। वह कहते हैं -"रामसिंह को मैं बर्खास्त कर रहा हूँ, इस बात पर कि उन्होंने आपका अपमान करके एक तरह से मेरा अपमान किया है। लेकिन रामसिंह अभी दो महीने तक इस राज्य के मैनेजर रहेंगे, यह साबित करने के लिए कि उनकी अन्य बातों से मैं सहमत हूँ और मैं दूसरों की ज़रा भी परवाह नहीं करता।"[2] उनके इस रूप को देखकर झगड़ू, रामनाथ के अपने प्रति सम्मानपूर्ण भाव को

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 494

2- वही- पृ० 341

जानते हुए भी उन्हें 'दानवता के उपासक'[1] की संज्ञा दे बैठते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रामनाथ में मनुष्यता एवं पाशविकता का ऐसा विचित्र सम्मिश्रण है कि लोग उनके सम्बंध में कोई निश्चित धारणा नहीं बना पाते। रामनाथ जैसे अद्वितीय चरित्र को वर्मा जी ने अपनी सम्पूर्ण संवेदना और सहानुभूति से गढ़ा है। रामनाथ के मानसिक विश्लेषण और अन्तर्द्वन्द्व-चित्रण के द्वारा उपन्यासकार उनके साथ पूर्ण न्याय कर सका है। इसीलिए वर्मा जी के प्रस्तुत उपन्यास के बौड़मपन पर हँस सकने की सम्भावना व्यक्त करने वाले श्री अज्ञेय जी ने भी रामनाथ के चरित्र को विश्वास्य और खरा बताया है -'उपन्यास का सबसे अधिक विश्वास्य और खरा चित्र ताल्लुकेदार का ही है और उसके बाद गाँव के बूढ़े झगड्डू का। और इसका कारण यही है कि इन्हीं दो पात्रों को लेखक की मानवीय सहानुभूति मिली है, इन्हीं के मन को उसने संवेदना के सहारे समझा और ग्रहण किया है।'[2]

<u>झगड्डू मिसिर :-</u> निस्संदेह रामनाथ के बाद झगड्डू मिसिर का चरित्र सर्वाधिक प्रभावशाली है। झगड्डू प्रारम्भ में अपने नाम के अनुकूल झगड़ालू स्वभाव के ही दीखते हैं किन्तु प्रथम दर्शन में ही रामनाथ और उनके पुत्र उमानाथ के प्रति झगड्डू की उदारता उनके व्यक्तित्व के कोमलांश को व्यक्त कर देती है। धीरे-धीरे उनकी झगड़ालू प्रकृति के ऊपर उनकी कोमलता, दयालुता और ममता भरी आकृति उभरती चली आती है। अपने पुत्र मारकण्डेय के प्रति तो उनमें अपार ममता है ही, पढ़ा-लिखा होने के कारण वह उसे मानते भी हैं; साथ ही मारकण्डेय के मित्रों के प्रति उनके व्यवहार को देखकर उनके निर्मल और स्नेही हृदय का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है। दयानाथ को निष्कासित किए जाने पर वह रामनाथ की कटु भर्त्सना करते हैं -' सो आप अपने को देवता समझन लाग हो, तिवारी जी! और हम कहत हन कि आप सैतान आव -- सैतान! अपने लड़का का घर से निकाल दीन्हेव और चेहरे पर सिकन नहीं आई! --- राम-राम!'[3] झगड्डू के इस कथन से रामनाथ का चरित्र तो उद्घाटित होता ही है, साथ ही झगड्डू की हार्दिक विशालता और दयालुता भी प्रकट हो जाती है।

रामनाथ सुसंस्कृत और सुशिक्षित होकर भी अपने पुत्र के साथ हठधर्मिता का व्यवहार करते हैं और उसके अधिकारों का हनन करते हैं किन्तु झगड्डू अशिक्षित और ग्रामीण होकर भी

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 342

2- हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, सच्चिदानंद वात्स्यायन : पृ० 92

3- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 281

अपने उदार और विचारवान होने का परिचय देते हैं। रामनाथ के पूछने पर कि -" अच्छा मिसिर जी ! आपने मारकण्डेय को जेल जाने से क्यों नहीं रोका ?" इसका उत्तर झगड्डू के प्रगतिशील विचारों का प्रकाशन करता है -" हम काहे का रोकित ? कौनो चोरी करके,डाका मार के, सेंध लगाय के तो जेल गा नाहीं -- देस के काम के लिए जेल गा है। तौन भला हम ऊका रोक के काहे के लिए पाप के भागी बनित।"[1]

वे सरल हृदय तो हैं ही, उनमें बातों को सही ढंग से सोचने विचारने की पर्याप्त क्षमता है। स्वाधीनता संग्राम में कांग्रेस की कमजोरी की ओर इंगित करते हुए वह कहते हैं - "लेकिन एक बात आप निश्चय करि के समझ राखौ ! यू सहर का जोश देस की स्वाधीनता की लड़ाई माँ काम न देई। शहर वाले लोग देखत हैं तमाशा -- देखते नाहीं हैं, तमाशा करत हैं। उनका खाय-पियन की कमी तो आय नहीं, पेट भरा है, मौज की जिन्दगी बितावत हैं।आज एक खेल से तबियत ऊबी, काल दूसर खेल रच दीन्हिन। तौन ई सब जोश जो आप सहर माँ देख रहे हौ, ईका हम लोग एक खेलै समझत आन जो जादा दिन नाहीं चलन का। वास्तविक काम तबहीं होई जब ई गाँववाले मनई अपने हाथ माँ लेहैं।"[2]

झगड्डू प्रत्येक स्थिति में मानवतावादी और लोकहितकारी दृष्टिकोण से सोचते हैं। वह लोकहित के लिए कायर बने रहने में ही विश्वास करते हैं और मनमोहन की 'मनुष्य के शिकार' की बात का खण्डन करते हैं, किन्तु गाँव के लोगों पर अत्याचार होते देख विद्रोह कर उठते हैं। वह रामसिंह मैनेजर को चुनौती देते हैं, मारने के लिए तत्पर हो जाते हैं और यहाँ तक कि रामनाथ की भी भर्त्सना करते हैं किन्तु गाँव वालों की हिंसा को शांत करते हैं और हिंसा या खून-खराबा रोकने के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं।

<u>वीणा मुकर्जी</u> :- वीणा मुकर्जी का प्रवेश 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' शीर्षक उपन्यास में बड़े ही नाटकीय ढंग से अनौपचारिक स्थिति में हुआ है। कलकत्ता की सुनसान गली से जाते हुए प्रभानाथ को एक युवती पिस्तौल ताने हुए खड़ी दिखाई देती है। प्रभानाथ द्वारा कार रोकते ही वह झपटकर कार में बैठ जाती है और प्रभानाथ की पसलियों से पिस्तौल अड़ाकर उसे कार तेजी से ले चलने का आदेश देती है। कार के कुछ दूर आगे जाने पर प्रभानाथ देखता है कि " वह करीब बीस बाईस वर्ष की युव बंगाली युवती थी और उसके मुख पर कठोरता थी। उसकी आँखें नीले चश्मे से

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 281

2- वही- पृ० 284

ढ़की थीं, --- उसे यह विश्वास हो गया था कि वे आँखें बड़ी-बड़ी हैं और प्रकाशवान हैं। युवती मझोले कद की थी और दुबली थी ; उसका रंग गेहुँआ था और यदि वह कुरुपन थी, तो वह सुन्दर भी नहीं थी।"[1] प्रभानाथ सहज ही अनुमान लगा लेता है कि वह क्रांतिकारी है। अगर इतना स्पष्ट अनुमान पाठक को न हो तो भी वीणा की इन गतिविधियों से यह आभास तो हो ही जाता है कि वह सामान्य युवती नहीं है और जान हथेली पर लिए घूम रही है, किन्तु वीणा के बाह्य आवरण के पीछे एक कोमलता थी, एक प्रकार का आकर्षण था, "उसके स्वर में भी कृत्रिम कठोरता के अन्दर सरसता थी - भावना थी"[2] इसे प्रभानाथ वीणा से हुई दूसरी भेंट में ही भाँप लेता है।

भावना के इसी प्रवाह में वीणा प्रभानाथ के प्रति आकर्षित हो जाती है और उसके हृदय की भावना, हृदय का प्रेम भावुकता के क्षणों में अनावृत हो जाता है -"नहीं, मरने के लिए मैं हूँ -- और सब हैं। लेकिन आप! आप के मरने का अभी समय नहीं है। आप अगर विपत्ति में पड़ जायेंगे तो मैं नहीं रह सकूँगी -- नहीं रह सकूँगी। ---"[3]

धीरे-धीरे प्रभानाथ के प्रति वीणा की भावना प्रबलतर होती जाती है और वह उन्नाव पहुँचकर घर के सदस्य की भाँति रहने लगती है किन्तु इस भावना के बीच वह अपने कर्तव्य से एक क्षण के लिए भी विचलित नहीं होती। प्रभानाथ के गिरफ्तार हो जाने पर जब उसे सूचना मिलती है कि प्रभानाथ मुखबिर बनने के लिए सहमत हो गया है तो वह प्रभानाथ और उसके पिता के प्रति आक्रोश से भर उठती है। वह रामनाथ को "विश्वासघाती" कहकर प्रभानाथ को मुखबिर बनने से रोकने के लिए प्रेरित करती है। और अंत में स्वयं प्रभानाथ को अँगूठी द्वारा जहर देकर पुलिस के अमानुषिक अत्याचार से मुक्त कराती है, प्रभानाथ को गिरफ्तार करनेवाले पुलिस इंस्पेक्टर की हत्या करती है और स्वयं भी अपने दल के लिए और अपने प्रेमी के लिए बलि चढ़ जाती है।

वीणा में प्रेम और कर्तव्य का बड़ा दिव्य समन्वय उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है। वह खतरों से खेलनेवाली, पुरुषों से कंधे में कंधा मिलाकर काम करनेवाली युवती होकर भी हिन्दू पत्नी एवं भारतीय नारी की गरिमा को साकार रूप प्रदान करती है।

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 61
2- वही- पृ० 67
3- वही- पृ० 87

वीणा के हाव-भाव, स्वर के उतार-चढ़ाव, क्रिया-प्रतिक्रिया और मानसिक उथल-पुथल का मर्मस्पर्शी विश्लेषण करके उपन्यासकार ने वीणा के चरित्र में प्राण-प्रतिष्ठा की है।

रामेश्वर :- 'आखिरी दाँव' नामक उपन्यास के प्रारम्भ में ही रामेश्वर के शारीरिक सौष्ठव का परिचय उपन्यासकार औपचारिक रीति से करवा देता है, फिर तो उसके कथन और उपन्यासकार के विवरण के द्वारा रामेश्वर का चरित्र उभरता चला जाता है। "रामेश्वर को सारा गाँव 'काका' कहता था। छरहरे बदन का लम्बा-सा आदमी, निःशंक और मस्त, ढलती हुई जवानी। मुख पर एक अजीब तरह की कोमलता थी, आँखों में एक अजीब तरह की चमक थी। खिचड़ी मूँछ लेकिन अच्छी तरह से छँटी हुई, घुटी हुई दाढ़ी। चाल में एक लापरवाही से भरी हुई ऐंठ, स्वर में मीठी-सी उपेक्षा की दृढ़ता। रामेश्वर की अवस्था करीब पैंतालीस वर्ष की थी।"[1]

ऐसे हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ रामेश्वर में अपनी पत्नी को खोकर भी कोई चारित्रिक दुर्बलता नहीं थी, किन्तु जुआ खेलना उसकी बहुत बड़ी कमजोरी थी। मथुरा उसकी इसी कमजोरी की ओर इशारा करते हुए कहता है - "आ गए रमेसुर काका। हम जानते थे तुम्हारे पैर घर में न ठहरेंगे।"[2] इसी मथुरा के घर जुआ खेलकर वह अपनी जमीन, हल-बैल, माल असबाब सब गँवा बैठता है और पाँच सौ रुपये लेकर बम्बई पहुँच जाता है। बम्बई में वह एक सेठ के यहाँ तगादगीर बनकर अपनी जीविका कमाने लगता है और एक दिन अचानक बड़ी नाटकीय स्थिति में उसका परिचय चमेली से होता है। वह पुलिस और एक दुश्चरित्र सेठ के चंगुल में फँसी चमेली को अपनी आशुबुद्धि के उपयोग से निकाल लाता है और यहीं से उसके जीवन का नवीन अध्याय प्रारम्भ होता है। एक आलोचक ने लिखा है - "नायक रामेश्वर का जुए में सब कुछ हारकर सामाजिक विभीषिका का शिकार होना और बम्बई जाकर फिल्मी संसार की सैर करना अल्फ लैला के किस्सों की याद दिलाता है।"[3] इस मत से कदापि सहमत नहीं हुआ जा सकता' क्योंकि समाज की विभीषिका से त्रस्त होकर बम्बई भागने वालों की संख्या कम नहीं है, यह अल्फ-लैला का किस्सा नहीं कठोर यथार्थ है। यह सम्भव हो सकता है कुछ अस्वाभाविक घटनाओं का समावेश उपन्यासकार ने इस उपन्यास में किया हो किन्तु रामेश्वर अपनी मानवीय दुर्बलताओं और गुणों को लेकर यथार्थ जगत् का व्यक्ति है, एक पुरुष है।

1- आखिरी दाँव- पृ० 3

2- वही- पृ० 7

3- हिन्दी उपन्यास-शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य - डॉ० प्रेम भटनागर- पृष्ठ-179

रामेश्वर चमेली को अपने घर ले जाता है किन्तु उसमें चमेली के प्रति तनिक भी कुत्सित भावना परिलक्षित नहीं होती। क्योंकि "वह गहरी किस्म का व्यक्ति है, शीघ्र ही बह जानेवाला कच्ची किस्म का नहीं।"[1] रामेश्वर भावना के प्रवाह में शीघ्र तो नहीं बहता किन्तु चमेली के साथ रहते-रहते उसके जीवन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन आ जाता है और वह चमेली के साथ गृहस्थी जमा लेता है। रामेश्वर में चमेली के प्रति प्रेम और अधिकार की भावना प्रबलतर होती जाती है इसीलिए वह चमेली को नौकरी करने से रोकता है, किन्तु चमेली के अन्दर धन की आकांक्षा बढ़ती जाती है और रामेश्वर चमेली की आकांक्षा को पूरा करने के लिए सट्टा खेलता है। इस प्रकार चमेली को अपना बनाए रखने के लिए वह निरंतर पतन की ओर बढ़ता जाता है और अंत में भी उसकी इच्छा पूरी नहीं हो पाती, जुए की दुर्बलता के कारण वह अपने जीवन का आखिरी दाँव भी हार जाता है।

रामेश्वर में पुरुषोचित अधिकार की भावना है और उसे वर्मा जी ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। पारिस्थिक विवशता के कारण ही वह चमेली का हीरोइन बनना स्वीकार करता है किन्तु चमेली के प्रति उसकी अधिकार भावना घटने के बजाय बढ़ती ही जाती है। अपनी इसी भावना के वशीभूत होकर वह चमेली के प्रति शंकालु हो उठता है औ इसी अधिकार से चमेली को सेठ शीतलप्रसाद के यहाँ से -"तुझे मैं घर चलकर दण्ड दूँगा --- चल मेरे साथ।"[2] कहते हुए ले आता है।

रामेश्वर के चरित्र को उपन्यासकार ने इतने यथार्थवादी रूप में प्रस्तुत किया है कि उसके अवैध धंधों से संलग्न होने पर भी उसे पाठक की सम्पूर्ण सहानुभूति प्राप्त होती है और "उसकी पराजय हमें विषाद में डाल देती है।"[3]

<u>गंगाप्रसाद</u> :- 'भूले बिसरे चित्र' शीर्षक उपन्यास में गंगाप्रसाद ऐसा पात्र है जिसके जीवन में सर्वाधिक संघर्ष आते हैं, जिसके माध्यम से भारतीय समाज के विभिन्न रूपों का सर्वाधिक अंकन उपन्यासकार ने किया है और जिसके जीवन के प्रत्येक मोड़ को वर्मा जी ने बड़ी रुचि के साथ चित्रित किया है।

उपन्यास में गंगाप्रसाद का प्रवेश ज्वालाप्रसाद के पुत्र के रूप में हुआ है किन्तु उसका वास्तविक स्वरूप उपन्यास के तृतीय खण्ड के प्रारम्भ में प्रकट होता है। वह हृष्ट-पुष्ट सुंदर

1- भगवतीचरण वर्मा के सामाजिक उपन्यास- अनंत चतुर्वेदी, आलोचना -अंक-20, पृ047

2- आखिरी दाँव- पृ0 226

3- आलोचना -अंक -20, पृष्ठ-48

नवयुवक तो है ही साथ ही पारिवारिक सुविधाओं के कारण उसकी शिक्षा-दीक्षा और लालन-पोषण बड़ी अच्छी तरह हुआ है और उसे डिप्टी कलक्टर बनने का सौभाग्य भी प्राप्त हो गया है। जैदेई के साथ रहने के कारण उसके पूरे ताल्लुकेदारी ठाठ हैं। इन सुख-सुविधाओं ने जहाँ उसकी योग्यताओं को बढ़ाया है वहीं उसमें कुछ दुर्गुण भी आ गये हैं और उसके यह दुर्गुण निरंतर विकसित होते-होते उसे अन्दर-बाहर से खोखला बना देते हैं। गंगाप्रसाद के इन्हीं दुर्गुणों की शिकायत करते हुए मीर जाफर अली कहते हैं -"जी आगे बढ़ेंगे खाक! इनकी ऐयाशी की शिकायतें अभी से आनी शुरू हो गयी हैं। खुदा जाने इसके ये अनाप-शनाप खर्च कहाँ से और किस तरह पूरे होते हैं, क्योंकि इसकी रिश्वत लेने की शिकायत कतई कहीं से नहीं है। मैं आपसे कहता हूँ पण्डत जी, किसी दिन चक्कर में पड़ जायेंगे यह बरखुरदार।"[1]

गंगाप्रसाद के अनाप-शनाप खर्च, जब तक जैदेई जीवित रहती है आराम से पूरे होते रहते हैं किन्तु उसकी ऐयाशी उसे कहीं का नहीं रखती। वह एक नहीं दो-दो स्त्रियों को अपनी वासना का शिकार बनाता है, मदिरा के सेवन से उसकी विलासी प्रवृत्ति और विकसित होती जाती है और अंतत: मदिरा-सेवन के आधिक्य के कारण वह क्षय रोग का शिकार बन जाता है।

अपनी इसी विलासिता के कारण उसका पारिवारिक जीवन भी दु:खमय हो जाता है। इसी ओर संकेत करता हुआ भीखू कहता है -"बेतहाशा रुपैया उड़ाय रहा है ई गंगा। हमें सुनै माँ आवा है कि ऊपर दुई-तीन हज़ार रुपया केर कर्जा हुइगा है! ---- गंगा से न कहेब कि हम सब तुमका बतावा है, नाही तौ ऊ हमें कहुँ का न राखी! का बताई भइया, हमें तो गंगा से डर लागत है। तौन गंगा एक रण्डी बैठाय लीन्हिस है। अब ऊकेर पूरा खर्चा और फिर रोज़ शराब पियत है, तौन शराब केर खर्चा! तो समझ लेब, ई सब माँ कर्ज़ तो हुइ जाई!"[2]

गंगाप्रसाद की यह अनैतिकता उसे अपनी पत्नी की उपेक्षा के लिए प्रेरित करती है। वास्तविकता यह है कि वह मन-ही-मन अपने इन कुकर्मों के लिए डरता रहता है, इसीलिए वह अपनी पत्नी की उपेक्षा करता है और मलका को सबकी निगाहों से बचाकर बनारस ले जाकर रखता है। उसे अपने खानदान और रुतबे की बदनामी का भय बराबर बना रहता है। वह कहता है -"काश, मैं मलका से शादी कर सकता, उसके नाम से 'रण्डी' शब्द का कलंक हटा सकता! लेकिन यह मुमकिन नहीं। मैं हिन्दू हूँ, मैं अपने समाज और धर्म के बन्धनों में जकड़ा हुआ हूँ।"[3]

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 243
2- ,, पृ० 435
3- ,, पृ० 461

गंगाप्रसाद में एक अकड़ और निडरता शुरू में दिखती है, किन्तु यह क्रमश: अन्दर ही अन्दर रीतती जाती है। एक ओर वह उच्च सभ्य समाज में 'मूव' करनेवाला 'अपटूडेट' युवक है तो दूसरी ओर उसका मन हिन्दू धर्म के पुरातन संस्कारों से बँधा है। यह गंगाप्रसाद की ही दशा नहीं है, गंगाप्रसाद के द्वारा तत्कालीन सम्पूर्ण युवा-वर्ग की मानसिक स्थिति का अंकन उपन्यासकार ने किया है। मानव मूल्यों के तीव्र संक्रमण के उस युग में युवा वर्ग पेशोपेश में था कि क्या स्वीकार्य है और क्या त्याज्य ? गंगाप्रसाद ऊपर से आधुनिक और निर्भीक दिखकर भी इतना विवेकशील नहीं कि युगानुरूप अपने को ढाल सके या युग को नवीन दिशा प्रदान कर सके अत: वह अन्दर ही अन्दर टूटता जाता है। एक ओर वह साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित होकर रुक्मा को अल्लामा पहशी के जाल से निकालता है, गेंदालाल को 'चमार' कहकर अपने घर से निकलने को कहता है ; तो दूसरी ओर वह फरहतुल्ला से यह कहता हुआ देखा जाता है -" फरतुल्ला साहेब, यह हिन्दू-मुसलमान का मसला है। क्या आप भी इस मसले को तसलीम करते हैं ?"[1]

गंगाप्रसाद की यह द्वैध-स्थिति धर्म के सम्बंध में ही नहीं है राष्ट्रीय चेतना के विषय में भी उसका मन द्विधाग्रस्त है। वह एक कठोर सरकारी अफसर है, वह राष्ट्रीय आंदोलनों का घोर विरोध करता है और पूर्ण दमन की नीति अपनाता है, किन्तु एक अंग्रेज के मुख से गाँधी जी के लिए 'लुच्चा लफंगा' शब्द सुनकर उसका खून खौल उठता है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी शासन की पक्षपातपूर्ण नीति के प्रति भी उसमें प्रबल आक्रोश है। उसका यह आक्रोश तब द्विगुणित हो जाता है जब एक अंग्रेज से उलझने के अपराध में, उसकी पूरी वफादारी को नजरन्दाज़ करके उसकी पदावनति कर दी जाती है। फिर भी गंगाप्रसाद अपने देश की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति के प्रति कभी आश्वस्त नहीं हो पाता, इसीलिए एकबार सरकारी नौकरी से इस्तीफा देने का निश्चय करके भी पुन: गुलामी भोगने के लिए वापस लौट आता है। गंगाप्रसाद की इस द्विधाग्रस्त मन:स्थिति का बड़ा ही क्रमिक विकास उपन्यासकार ने दिखाया है और उसमें कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने पायी है।

गंगाप्रसाद के मन की इस द्वैध-स्थिति से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें एक निर्णय लेने की और उस पर दृढ़ रहने की क्षमता का पूर्ण अभाव है और इसीलिए जीवन के उत्तरकाल में वह अकड़बाज और होनहार युवक बिल्कुल पराजित और थका हुआ-सा दिखता है, उसमें परिस्थितियों से लोहा लेने की शक्ति नहीं है, परिस्थितियाँ उसे तोड़कर रख देती हैं। इसीलिए यौवन की उमंग में परिवार की उपेक्षा करनेवाला व्यक्ति अंत समय ~~का~~ पूर्णतया

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 551

परिवार पर अवलम्बित दिखता है। उसे अपनी आन्तरिक कायरता के कारण हर जगह असफलता का मुँह देखना पड़ा था। वह अपने पुत्र से कहता है -"नवल, मैं जीवन में भयानक रूप से असफल रहा हूँ। यह पद, उन्नति, मान, यह सब केवल ऊपरी दिखावा भर है ; इनमें कुछ है नहीं।"[1] उसके इस कथन में 'वह स्वामित्व की भावना, वह अधिकार का अहं, वे सब एकबारगी ही गंगाप्रसाद' को छोड़कर जाते दीखते हैं। पुत्र द्वारा आश्वासन दिए जाने पर ही उसका मन शान्त हो पाता है और उसके आत्म-निवेदन में मानो उसका हृदय ही उमड़ पड़ता है- नवल, है - जानते हो मैं क्यों टूटा और कैसे टूटा ? तुम ताज्जुब करोगे यह जानकर कि अपने को तोड़ने वाला स्वयं मैं हूँ। मेरे अन्दर वाली कायरता और उस कायरता की घुटन ने मुझे तोड़ दिया।[2]

अपनी समस्त दुर्बलताओं के उपरांत भी गंगाप्रसाद का चरित्र इतना प्रभावशाली क्यों बन गया - प्रश्न उठता है। इसका एकमात्र कारण यही है कि वर्मा जी ने अपनी सम्पूर्ण चरित्र-निर्माण-क्षमता से इस चरित्र की सर्जना की है, वर्मा जी की संवेदना तो उसे प्राप्त ही है, साथ ही गंगाप्रसाद के एक-एक कथन और उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया के द्वारा उसकी मानसिक स्थिति का दिग्दर्शन उपन्यासकार ने बड़ी सफलतापूर्वक करवा दिया है। उसके अकड़भरे आकर्षक व्यक्तित्व से उसके निष्प्रभ थके-हारे व्यक्तित्व की यात्रा के प्रत्येक मोड़ का बड़ा ही सटीक चित्रण वर्मा जी ने किया है इसीलिए गंगाप्रसाद की मृत्यु से उसके घर में ही चीत्कार नहीं उठता वरन् पाठक का मन भी उस वेदना का अनुभव करने लगता है।

<u>संतो</u> :- 'भूले बिसरे चित्र' में संतो का पति तो पूर्णतया वर्ग-प्रतिनिधि पात्र है किन्तु संतो के निजी व्यक्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। उसकी अपनी निजी समस्याएँ हैं और दुर्बलताएँ भी। संतो भारतीय संस्कारों में पली एक सुन्दर युवती है किन्तु पति की उपेक्षा और अपनी भाभी के साथ अवैध सम्बंध उसमें मानसिक कुंठा के बीज बो देते हैं, जो अवसर पाते ही उसे पतन की ओर खींच ले जाते हैं।

संतो एक अबला नारी है जो पुरुष की शक्ति और सहारे की भूखी है, किन्तु उसे यह सहारा अपने पति से नहीं मिल पाता क्योंकि वह अपने भाभी की आड़ में अपनी हीन भावना, स्त्रैणता और कायरता को छिपाए रखना चाहता था और संतो की मनोवेदना का कहीं अंत नहीं था वह कहती है -" तो दुनिया मुझे पाना चाहती है। लेकिन मैं जिसे पाना चाहती हूँ वह किसी दूसरे का है। इससे बढ़कर दुर्भाग्य मेरा क्या होगा।"[3]

1- भूले बिसरे चित्र- पृ0 577
2- वही- पृ0 ~~598~~ 594
3- वही- पृ0 269

भगवान ने भी मेरे साथ एक अच्छा-खासा खिलवाड़ किया है। इतना अधिक रूप दिया है मुझे, और मेरा यह रूप मेरे गिरने का सबसे बड़ा प्रलोभन है। उसने दिल में उमंग दी है, भावना दी है, प्यार करने और प्यार पाने की चाह दी है। क्या नहीं दिया है उसने ? सब-कुछ तो मिला है मुझे, और इस सबके साथ उसने मेरे मन को एक बहुत बड़ा असन्तोष भी दिया है।"[1] गंगाप्रसाद को देख संतो की 'प्यार करने और प्यार पाने की चाह' बलवती हो उठती है। वह अपने ऊपर लाख संयम रखने का यत्न करते हुए भी अपने को गंगाप्रसाद के हाथों सौंप देती है। और एक बार सुलगी यौन-कुंठा की ~~चिनगा~~ चिनगारी उसके सम्पूर्ण जीवन को नैतिक रूप से स्वाहा कर देती है। संतो के मन में सोयी अतृप्त नारी एक बार जागती है तो उसके जीवन को नीचे-नीचे पतन की ओर घसीटती जाती है। फिर तो संतो अपने सौन्दर्य का मूल्य वसूलना भी खूब सीख जाती है। अपने रूप और यौवन की कीमत पर वह कलकत्ते के धनिक वर्ग और वाइसराय के ए०डी०सी० मेजर वाट्स से मित्रता कर धन, वैभव मान-मर्यादा सभी कुछ प्राप्त कर लेती है, किन्तु उसकी संस्कारबद्ध आत्मा उसे धिक्कारने से बाज़ नहीं आती। वह गंगाप्रसाद के समक्ष स्वीकार करती है -" मैं जानती हूँ कि मेरे सम्बंध में तुमने जो-कुछ देखा और जाना है, वह तुम्हें अच्छा नहीं लगा। तुम शायद इस समय तक मुझसे घृणा भी करने लग गए होगे। लेकिन मैं क्या करूँ ? मैं अपने से ही विवश हूँ। मैं कभी-कभी सोचने लगती हूँ कि मैं ग़लत कर रही हूं, लेकिन मेरी ग़लती दिखलाने वाला भी तो कोई नहीं है। सोचो तो, कौन-सा सहारा है मेरे पास, जिसे पकड़कर मैं बचूं ? जिस सहारे को मैं पकड़ती हूँ वही मुझे नीचे घसीटता है।"[2] इतना ही नहीं उपन्यास में संतो के अंतिम दर्शन के समय 'उसका फूट पड़ना, उसकी आँखों में आँसू झरना और उसकी हिचकियाँ बँध जाना ' इस बात का द्योतन करते हैं कि संतो को अपने नीचे गिरने का अत्यंत खेद है और वह उस स्थिति से उबरना भी चाहती है किन्तु एक बार शैतान के हाथों अपने को सौंपने के बाद उसमें स्वयं 'उठने ' की शक्ति नहीं रह गयी है और उसे उठाने वाला कोई नहीं है।

वर्मा जी ने संतो को पूर्णतया यथार्थवादी भूमिका पर प्रस्तुत किया है। पहले ही कहा जा चुका है कि संतो किसी वर्ग की प्रतिनिधि न होकर निजी कुंठा और वेदना से पीड़ित एक नारी है, एक 'व्यक्ति' है। अतः उसके आधार पर जौहरी वर्ग के समूचे परिवार को

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 274

2- वही- पृ० 378

घृणित मान बैठना उचित नहीं प्रतीत होता, जैसा कि विद्वान् समीक्षक डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने मान लिया है। उन्होंने लिखा है -"आश्चर्य होता है, श्री राधाकिसन की पत्नियों के चरित्र किस उद्देश्य से चित्रित किए गए। जौहरी वर्ग में इस प्रकार के घिनौने व्यक्तित्व सम्भव हो सकते हों, संभव है, आज भी हो सकते हैं, परन्तु उसका समूचा नारी परिवार ही इस प्रकार घृणित हो सकता है, यह स्वीकार करना कठिन है, चाहे वह परिवार 1910 का ही क्यों न हो। सन्तो और कैलासो का उपन्यासगत आचरण संभावना की दृष्टि से समुचित नहीं जान पड़ता। रेल में सन्तो का गंगाप्रसाद के प्रति व्यवहार इतनी जल्दी रागात्मक रूप से खुल पड़ता है कि ~~दैदि०~~ दैनंदिन जीवन में आज आधी सदी बाद भी उसी प्रकार का आचरण संभावना की दृष्टि से समुचित नहीं जान पड़ता। इन दोनों पात्रों के चरित्र को संभवत: धीरे-धीरे उभारने की आवश्यकता थी।"[1] यह आरोप भ्रमाधारित प्रतीत होता है। प्रथम तो, संतो और कैलासो राधाकिशन की पत्नियाँ न होकर राधाकिशन की पत्नी और भाभी हैं। संतो के माध्यम से वर्मा जी ने नारी की यौन-कुंठा की समस्या को उठाया है और संतो के चरित्र की संगति बिठालने के लिए ही कैलासो की अवतारणा की गयी है। जहाँ तक संतो के आचरण की संभावना की बात है, किसी स्वस्थ,सुंदर पुरुष के प्रति किसी अतृप्त नारी का अनायास आकर्षित हो जाना असंभव एवं अस्वाभाविक नहीं है। संतो और गंगाप्रसाद के परस्पर आकर्षित होने, उनके सम्बंधों के बढ़ने और उनके शारीरिक सम्बंध के सम्पूर्ण प्रसंग को वर्मा जी ने बड़ी ही कुशलता से क्रमश: प्रस्तुत किया है।

<u>झिनकी :-</u> झिनकी निम्न वर्ग की पूर्णरूपेण प्रतिनिधि होते भी अपनी भाषा और चित्रण-शैली के कारण ~~[illegible]~~ 'भूले बिसरे चित्र' की सर्वाधिक सशक्त नारी पात्र है। उसके सम्बंध में डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित का कथन पूर्णतया समीचीन प्रतीत होता है -"कामतृप्ति की पात्र रहकर भी झिनकी इतनी सेवामयी,आत्मत्यागशील और विवेकशील है कि कुलीन सन्तो हो चाहे कैलासो या जैदेई हों या रानी कहलानेवाली देवी उसके चरित्र की तुलना में सभी तुच्छ और क्षुद्रतम सिद्ध हो जाती हैं।"[2] झिनकी के चरित्र की उपर्युक्त सभी विशेषताएँ कुछ समय पूर्व की स्वामिभक्त एवं ममतावान् परिचारिकाओं को साकार एवं जीवंत रूप उपस्थित कर देती है।

झिनकी अपने पति के रहते हुए भी तन और मन दोनों से मुंशी शिवलाल की सेवा करती है। मुंशी शिवलाल और उनके पुत्र ज्वालाप्रसाद के लिए उसके मन में अगाध स्नेह है,उसके

1- 'आज'-साहित्य विशेषांक-60 पृ० 61(आधुनिक उपन्यास : उद्भव और विकास-डॉ० बेचन, पृ० 164 से उद्धृत)

2- 'आलोचना' : 36-अप्रैल 1966,पृ०-२०४

इसी स्नेह ने उसे नौकरानी होते हुए भी घर में महत्वपूर्ण स्थान और अधिकार दिलवाया है। छिनकी इतनी अनुभवी एवं चतुर है कि अपनी प्रत्येक बात को इतनी कुशलता से शिवलाल के समक्ष रखती है कि वह उसे मानने के लिए विवश हो जाते हैं। वह ज्वाला और उसकी पत्नी यमुना के प्रति अपनी ममता के कारण यमुना को ज्वाला के साथ जाने के लिए प्रेरित करती है, किन्तु यमुना के डरने पर वह मुंशी शिवलाल से यह प्रस्ताव करती है। शिवलाल द्वारा ध्यान न दिए जाने पर वह अपनी वाक्चातुरी और बुद्धि-कौशल का परिचय देती है - "परदेश का ~~मामला~~ मामला, हुकूमत का जोर और ऊपै भद्दर जवानी की उमिर ! मान लेव ज्वाला कौनौ जवान पठिया घर माँ बैठाय लेय तो ?"[1] और इस बार वह सफल होती है। इसी प्रकार ज्वाला के घर से उनके चाचा और चाचा के परिवार को बिदा करने में भी वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इन सभी कार्यों के पीछे उसकी शिवलाल और ज्वालाप्रसाद के परिवार के लिए अपार ममता और निष्ठा का ही हाथ है। वह स्वार्थ के लिए कभी भी चतुराई नहीं दिखाती। उसमें ~~स्वामिभक्त~~ स्वामिभक्त नौकरानी के सभी गुण विद्यमान हैं और उनका वह बड़े अधिकारपूर्वक प्रयोग करती है। शिवलाल भी उसके इन गुणों का आदर करते हुए अपने अंत समय ज्वालाप्रसाद से कहते हैं - "यह छिनकी, यह तेरी दूसरी माँ है। मैंने इसे बड़ा कष्ट दिया है, इसकी कोई बात नहीं सुनी मैंने ! तो इसे अब तेरी दया पर छोड़ रहा हूँ। तेरी सबसे अधिक सगी यही है।"[2]

छिनकी के माध्यम से उपन्यासकार ने निम्नवर्गीय परिचरों की समस्त विशेषताओं का आकलन कर लिया है। उसमें अपने वर्ग की अस्पृश्यता की हीन भावना भी विद्यमान है। वह धर्मभीरुता और परम्परागत संस्कारों से प्रतिबद्ध है, उसका विश्वास है कि उसके हाथ की 'कच्ची रसोई' का भोजन खाने से उच्च वर्ण के व्यक्तियों का धर्म नष्ट हो जायेगा और उसे स्वयं पाप का भागी बनना पड़ेगा। वह शिवलाल से कहती है - "तुम्हारे हाथ जोड़ित हन, ई पाप हमसे न कराओ - हम चौका माँ न घुसब। तुम्हार परलोक हमरे हाथ न बिगड़े।"[3] किन्तु शिवलाल द्वारा अधिक जोर दिए जाने पर वह रोते हुए रसोई में चली जाती है और कहती है - "हे गंगा मइया ! तुम हमार साच्छी हो कि हम इनकेर धरम नाहीं लीन। इनकेर अक्किल बौराय गई है, तौन इनकेर पाप छमा करो। रसोई बनाय के इन्हें खिलाई तो इनकेर धरम जाय, और ~~न~~ बनई तो ई भूखन ~~कलपै~~ कलपैं और हम पर मार पड़ै ऊपर से।"[4] छिनकी के इस कथन से दलित वर्ग के

1-	भूले बिसरे चित्र-	पृ० 22-23
2-	वही-	पृ० 172
3-	वही-	पृ० 118
4-	वही-	पृ० 119

परिचरों की कई विशेषताएँ उद्घाटित हो जाती हैं। एक ओर उनकी धर्मभीरुता पर प्रकाश पड़ता है, तो दूसरी ओर उनकी स्वामिभक्ति और ममता भी झलकती है; साथ ही अपने समाज में उनकी दयनीय स्थिति का पर्दाफाश हो जाता है। छिनकी ऐसी कर्तव्यपरायणा और ममतामयी दासी भी शिवलाल की गाली और मार खाकर रोती रह जाती है। पिछड़े वर्ग के जिन अधिकारों की बात आज कही जाती है वह उसमें छू भी नहीं गयी है। इसके अतिरिक्त हमारी खोखली समाज-व्यवस्था पर भी उपन्यासकार ने इस प्रसंग को उठाकर व्यंग्य किया है। जिस स्त्री को अंकशायिनी बनाकर उच्च वर्ण का धर्म नष्ट नहीं होता, 'पक्का खाना' खाने में उसका धर्म नष्ट नहीं होता, उसी के हाथ का कच्चा खाना खाने में उसका धर्म नष्ट हो जाता है, लोक-परलोक सब बिगड़ जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छिनकी का चरित्र-चित्रण पूर्णरूपेण सोद्देश्य है और वह वर्गगत विशेषताओं से युक्त प्रतिनिधि पात्र है, तथापि उसकी अपार ममता और स्वामिभक्ति उसे प्रस्तुत उपन्यास का चिरस्मरणीय पात्र बना देती है।

<u>श्यामला :-</u> 'वह फिर नहीं आई' उपन्यास के फ्लैप पर छपी कुछ पंक्तियाँ श्यामला के चरित्र की बहुत-कुछ व्याख्या कर देती हैं - 'नारी सनातन काल से पुरुष की लालसा का केन्द्र है। जीवन के संघर्षों में फँसकर अभागी नारी को संसार के प्रत्येक छल-कपट का सहारा लेना पड़ता है। किन्तु आधुनिक जीवन-संघर्षों की विषमता में ममता का सम्बल जीवन-नौका के लिए महान् आशा है।'

पुरुष की कुत्सित इच्छाओं और जीवन की विषम ~~घर्~~ स्थितियों का ग्रास बनकर रानी श्यामला अपने तन की पवित्रता को गँवा देती है किन्तु उसकी आत्मा पूर्णरूपेण शुद्ध बनी रहती है। उसकी अकलुष आत्मा जीवनराम के प्रति उसकी ममता पर प्रहार करनेवाले समाज और उसके द्वारा निर्मित परिस्थितियों से बदला लेने के लिए अपने तन की आहुति दे देती है। उपन्यास के आरम्भ और अंत में श्यामला का जो रूप दिखता है, वह उसे व्यभिचारिणी ही सिद्ध करता है, किन्तु सम्पूर्ण लघु उपन्यास पढ़ने पर हमें श्यामला की मनोवेदना का साक्षात्कार होता है और हमारा मन उसके प्रति संवेदनशील हो उठता है।

श्यामला को अपने पति जीवनराम के प्रति अपार प्रेम और ममता है किन्तु भारत के विभाजन के समय उसके जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं कि वह आत्मा से जीवनराम की बनी रहकर भी शरीर से एकनिष्ठ ~~रह~~ नहीं रह पाती। जीवनराम अपनी दोनों की जान बचाने के लिए अपने एक मुसलमान मित्र शहबाज के पास उसे छोड़कर बीस हजार रुपया कमाने के

लिए हिन्दुस्तान चला आता है। श्यामला रोती कलपती शहबाज के पास रह जाती है किन्तु समय उसके दुख की खाई को पाटता चला जाता है और वह एक दिन शहबाज की बन जाती है और उसी दिन से उसके जीवन में दुर्भाग्य प्रवेश कर जाता है। वह अपनी कहानी सुनाते हुए ज्ञानचन्द से कहती है -" मैं कहती हूँ, अगर शहबाज हमारी मदद न करता तो अच्छा होता। ----- उन आग की लपटों में हम दोनों मर जाते ; यही होता न। थोड़ी देर की तकलीफ हुई होती और सब काम एकबारगी ही हमेशा के लिए खत्म हो गया होता। जो जिन्दगी मुझे आज बसर करनी पड़ रही है, उससे तो नजात पा जाती। आज यह दिन तो देखने को न मिलता जहाँ घुटन, बेइज्जती और मायूसी के सिवा और कुछ नहीं है। लेकिन भगवान को शायद और कुछ मंजूर था।"[1] इन पंक्तियों में श्यामला द्वारा वेश्या-सा जीवन बिताये जाने की विवशता प्रकट हो जाती है।

जीवनराम, जो रुपया लेकर श्यामला को छुटाने गया था, वह उसने अपने मित्र की फर्म से गबन करके प्राप्त किया था, वह रुपया उन दोनों के जीवन में अभिशाप बनकर आता है। उस रुपये को चुकाने के लिए ही जीवनराम को जेल जाना पड़ता है और तिल-तिल घुटकर अपना जीवन समाप्त कर देता है और श्यामला को अपना शरीर बेचना पड़ता है। परन्तु जब तब जीवनराम जिन्दा रहता है, श्यामला अपने को पूरी तरह बेच भी नहीं पाती। वह कहती है -" लेकिन मैं अपने को ठीक तौर से न बेच सकी। शरीर दूसरे आदमियों को बेचने के वक्त आत्मा को शैतान के हाथों बेच देना पड़ता है, तब कहीं जाकर कामयाबी हासिल होती है। लेकिन मैं अपनी आत्मा को न बेच पाती थी, वह तो हमेशा-हमेशा के लिए जीवनराम की हो चुकी थी। इस शरीर को बेचने के समय मेरी आत्मा को कितनी तकलीफ होती थी, आप इसका अन्दाज़ा नहीं लगा सकते। यह दुनिया के साथ छल करना, फरेब करना, यह दुनिया को धोखा देना--- मैं तड़पने लगती थी।"[2] किन्तु, जीवनराम की मृत्यु के बाद वह रूप और यौवन का मोल करनेवाले समाज से बदला लेने के लिए अपना शरीर स्वाहा करने के लिए निकल पड़ती है। वह कहती है -"लेकिन जीवनराम की ममता और उसका सहारा, ये मेरे पास हैं। इसे मैं कैसे छोड़ दूँ? उसकी तस्वीर मेरे दिल में नक्श है। उसे मैं कैसे भूल जाऊँ? मैं इस दुनिया से जीवनराम का बदला ले रही हूँ; और इसलिए आप मुझे नहीं रोक सकेंगे ज्ञानचन्द जी।"[3]

1- वह फिर नहीं आई- पृ० 58-59

2- वही- पृ० 67

3- वही- पृ० 110

श्यामला के उपर्युक्त कथन चित्रलेखा के कुछ कथनों की भाँति भ्रामक नहीं है वरन् बड़ी भावात्मक स्थितियों में उसके हृदय की मनोव्यथा को खोलकर रख देने वाले अकृत्रिम कथन हैं, अतः इनसे श्यामला की एकनिष्ठा और अपार ममता सिद्ध हो जाती है, और उसके चरित्र पर लगाया गया लांछन सर्वथा असत्य प्रमाणित हो जाता है।[1]

<u>रानी मानकुमारी</u> :- 'सामर्थ्य और सीमा' की रानी मानकुमारी को उपन्यासकार ने इतने आकर्षक और मोहक सौन्दर्य एवं व्यक्तित्व से संयुक्त करके प्रस्तुत किया है कि वह उपन्यास के प्रतिभाधनी एवं विश्व-विख्यात पात्रों को तो अपने जादू के वशीभूत कर ही लेती हैं, पाठकों पर भी अपना विशिष्ट प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहतीं। वर्मा जी ने बड़े मनोयोग से उनके रूप-सौन्दर्य का चित्रण किया है। सर्वप्रथम उनके दर्शन से लोगों पर 'एक बिजली-सी कौंध' जाने का प्रभाव पड़ता है। अत्यंत नाटकीय स्थिति में उनका प्रवेश उपन्यास में होता है - "और उस कार के अन्दर वाली बत्ती जल उठी। --- एक बिजली-सी कौंध गई सब लोगों की आँखों के सामने। अनुपम सौन्दर्य, मानो स्वर्ग से कोई अप्सरा उतर आई हो। स्टियरिंग व्हील पर बैठी रानी साहिबा यशनगर स्वयं अपनी कार ड्राइव कर रहीं थीं।"[2] मानकुमारी के सम्बंध में अपनी छोटी-सी टिप्पणी देकर लेखक शान्त हो जाता है, किन्तु थोड़ी ही देर बाद उनकी रूपाकृति का विस्तृत वर्णन करने का लोभ-संवरण नहीं कर पाता - "रानी मानकुमारी को अद्वितीय सौन्दर्य मिला था, आर्य और मंगोल रक्त का सम्मिश्रण। रानी मानकुमारी का वर्ण चम्पा की भाँति पीला तथा सुनहला था। स्वस्थ और सुडौल, शरीर गठा हुआ। युवावस्था के रक्त के गुलाबीपन ने उनके वर्ण को और भी निखार दिया था।"[3] इसके आगे भी मानकुमारी के शारीरिक सौष्ठव की समस्त विशेषताओं को उपन्यासकार समास शैली में गिना जाता है और उनकी सुदर्शन छवि को साकार कर देता है। इसके पश्चात् उपन्यासकार उन्हें विभिन्न रूप-सज्जा में प्रस्तुत करता जाता है और उपन्यास के सुप्रसिद्ध महान् व्यक्तियों को उनके रूप से पराभूत दिखलाता है।[4] यहाँ तक कि रानी के श्वसुर मेजर नाहरसिंह भी उनके रूप से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।[5]

1- डॉ० सुरेश सिन्हा ने आरोप लगाया है - "कोई भी भारतीय नारी, चाहे वह जिस किसी भी वर्ग एवं समाज से सम्बंधित है, यदि वह अपने पति-प्रेम एवं आत्मा की रक्षा करना चाहती है, जैसा कि श्यामला का दावा था, तो वह शहबाज के हाथों अपने सतीत्व को बेचने के पहले मर जाना अधिक पसन्द करती। वह आदर्शवाद नहीं यथार्थवाद होता।"
- हिन्दी उपन्यास :उद्भव और विकास, डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० 409
2- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 55
3- वही- पृ० 61-62
4- वही- पृ० 131,158,170,197,214,226,260,267
5- वही- पृ० 66,71,134,

परन्तु, रानी मानकुमारी का सौन्दर्य भारतीय संस्कारों के कारण मेजर नाहरसिंह को अभिशाप प्रतीत होता है - "लेकिन यह सुन्दरता दूसरों के लिए ही नहीं तुम्हारे लिए भी अभिशाप है।"[1] और रानी मानकुमारी भी उसे अभिशाप ही मानती हैं - "मैं अपने निरर्थक, निरुद्देश्य और लक्ष्यहीन सौन्दर्य से आजिज़ आ गयी हूँ। कभी-कभी जी होता है कि ज़हर खाकर मर जाऊँ और मेरा यह सौन्दर्य सदा के लिए नष्ट हो जाए। ---- मेरे लिए यह सुन्दरता वरदान न बनकर अभिशाप बन गयी है। मेरी सुन्दरता के कारण लोग मुझे नष्ट करना चाहते हैं, मुझे मिटाना चाहते हैं। समझ में नहीं, यह मनुष्य कितना बड़ा पशु है जो सुन्दरता को नष्ट करना चाहता है। जो चाहता है, अपनी ओर बुरी भावना से देखने वाले की मैं आँखें फोड़ दूँ।"[2] रानी मानकुमारी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही विधवा हो गयी थीं और उसका जीवन गहरी वेदना से भर उठा था, किन्तु सुमनपुर में सुप्रसिद्ध मेहमानों को देख उनके मन में जीवन की रंगीनी के प्रति एक बार पुन: मोह उत्पन्न हो गया। उसी मोह को परिलक्षित कर उन्हें अपना सौन्दर्य अभिशाप प्रतीत होने लगा था। मंसूर से लेकर देवलंकर तक वह सभी से प्रभावित होती हैं और उनका मन अपने से ही आशंकित हो उठता है। वह कहती हैं - कक्का जी, अपने मन के पाप को मैं आपको अब बतलाती हूँ। आज न जाने क्यों जीवन की रंगीनी के प्रति मुझमें मोह जाग उठा है। मेरे यहाँ कुछ विशिष्ट मेहमान आ रहे हैं। --- इन लोगों के सामने अपने सौन्दर्य के प्रदर्शन की भावना मेरे मन में उठ खड़ी हुई है। यह सब क्यों ? मेरे अन्दर एक अजीब-सी पुलकन भर गई है, यह किसलिए ? आपसे अपनी बात कह सकती हूँ, इस दुनिया में एक आप हैं मेरे लिए। आप ही बतलाएँ कि क्या कुछ अनुचित हो रहा है मुझसे ? अपनी इस भावना से बड़ा डर लग रहा है, मुझे स्वयं अपने से डर लग रहा है।"[3] अपने मन में कामना के प्रादुर्भाव से रानी भयभीत तो अवश्य होती हैं, किन्तु उसके प्रबल आवेग को रोकना उन्हें असंभव प्रतीत होता है और इसीलिए वह शर्मा, राव, मकोला, मंसूर और देवलंकर के प्रस्तावों को थोड़ी झिझक के बाद स्वीकार कर लेती हैं। अब उनके समक्ष पाँचों में से एक के चुनाव का आता है, यहाँ उनके लिए निर्णय असंभव हो जाता है। उनके निजी संस्कार उन पर बराबर अपना नियंत्रण बनाए रखते हैं। एक ओर उन्हें अपना वैधव्य असह्य एवं दारुण प्रतीत होता है तो दूसरी ओर भारतीय नारी का आदर्श उन्हें सचेत कर जाता है। इस द्वन्द्व की स्थिति से वह उबर नहीं पातीं।

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 72

2- " पृ० 136

3- " पृ० 137

रानी मानकुमारी अपने यौवन की तृप्ति के अतिरिक्त अपने खोये हुए वैभव को भी प्राप्त करना चाहती हैं और इसके लिए वह उपर्युक्त सभी व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करना चाहती हैं। संस्कार वहाँ भी आड़े आते हैं किन्तु अंततः वह समर्पित हो जाती हैं। परन्तु उनकी कोई भी इच्छा नियत के विधान के समक्ष फलवती नहीं हो पाती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रानी मानकुमारी अपूर्व सौन्दर्यवती नारी होकर भी भारतीय संस्कारों से युक्त सामान्य नारी हैं, जिनमें सभी प्रकार की मानवीय दुर्बलताएँ और योग्यताएँ किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। परन्तु उपन्यासकार ने उनका ऐसा स्वाभाविक विकास दिखलाया है कि वह अपनी समस्त दुर्बलताओं के होते हुए भी हमारे मन-प्राणों को छू जाती हैं।

<u>नाहर सिंह</u> :- 'सामर्थ्य और सीमा' में दूसरा आकर्षक चरित्र है मेजर नाहरसिंह का। मेजर नाहरसिंह वर्मा जी के विचारों के वाहक बनकर आये हैं किन्तु उनके दार्शनिक और भविष्यवक्ता होने के कारण उनके विचार बोझिल नहीं हो पाये हैं और नाहरसिंह के व्यक्तित्व के साथ खप गये हैं।

मेजर नाहरसिंह में राजकुल में उत्पन्न होने के कारण स्वाभिमान, कुल-गौरव की भावना एवं अहम्मन्यता कूट-कूट कर भरी है, किन्तु उसके कठोर आवरण में बच्चों सी कोमलता एवं माँ की-सी ममता का अगाध स्रोत प्रवाहित होता रहता है। उनके व्यक्तित्व में इन विरोधी तत्वों के सम्मिश्रण से उपन्यासकार ने ऐसा आकर्षण एवं विचित्रता भर दी है कि मेजर नाहरसिंह के घटनास्थल पर पहुँचते ही वातावरण में एक जान-सी आ जाती है। मानकुमारी के प्रति उनकी ममता की कोई सीमा नहीं है, जिस प्रकार कोई माँ अपने बच्चे के रूप और गुण की प्रशंसा करती थकती नहीं है उसी प्रकार नाहरसिंह मानकुमारी के एक-एक क्रिया-कलाप पर नजर लगाए रहते हैं। इसीलिए मानकुमारी के मन में विशिष्ट मेहमानों के आगमन पर 'पुलकन' और 'प्रदर्शन की भावना' जागने पर उनका कुल-गौरव संयुक्त संस्कारी मन अंकुश नहीं लगाता वरन् यौवन की उमंग भरी चन्द घड़ियों को हँसी-खुशी बिताने के लिए प्रोत्साहित करता है "यह यौवन पागलपन का एक खेल है, खेल लो इसे, रानी बहू। इस खेल का सुख ही एकमात्र उपलब्धि है जीवन की। यही क्रीड़ा हमारे अस्तित्व की सार्थकता है। दुनिया में सब लोग खेलते हैं, अपने-अपने ढंग से। इस खेल से विरक्ति ही निर्जीवता का पहला लक्षण है। तुम निर्जीव बनते-बनते बच गईं, रानी बहू- तुम्हें मेरी बधाई।"[1] किन्तु अपनी विधवा

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 138

बहू को अपनी ममता और उदारतावश यौवन के खेल को खेलने के लिए प्रोत्साहित करनेवाला व्यक्ति बहू के प्रति किसी व्यक्ति की कुत्सित भावना को कदापि सहन नहीं कर पाता। मंसूर द्वारा मानकुमारी के सौंदर्य की प्रशंसा किए जाने पर मेजर एकदम क्रोधित हो उठते हैं -"आदर और विनय के साथ बात करो। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि तुम यशनगर की राजलक्ष्मी के सामने खड़े हो।"[1] और उपन्यास के अंत में नाहरसिंह कुल की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए ही मानकुमारी पर क्रोधित हो उठते हैं -"मृत्यु से बचना चाहती हो रानी बहू, जीवित रहना चाहती हो। किसलिए? अभाव और विवशता से मजबूर होकर अपने को बेचने के लिए? इस जीवन में अब रह ही क्या गया है तुम्हारे वास्ते? भगवान नहीं चाहते कि यशनगर की राज्य-लक्ष्मी को वेश्या का जीवन बिताना पड़े।"[2]

नाहरसिंह के सम्बंध में उपन्यासकार पहले ही सपष्ट कर देता है कि 'मेजर नाहरसिंह कभी-कभी बहकी-बहकी बातें करने लगते हैं और उनकी ये बातें हमेशा सच निकलती हैं।"[3] वह भविष्यवक्ता के रूप में प्रसिद्ध थे और वह स्वयं भी अनुभव करते थे कि 'उनके जीवन में कुछ ऐसे क्षण आ जाते हैं जब वह जो कुछ कह देते हैं वह सच होता है।"[4]परन्तु इस असाधारणता के होते हुए भी उन्होंने जीवन के इतने अधिक कड़ुवे-मीठे अनुभव प्राप्त किये थे कि उनके आधार पर कही गयी बातों का सच निकलना अस्वाभाविक नहीं लगता। उन्होंने अपने जीवनानुभवों से यह निष्कर्ष निकाला था कि 'सत्ता जिसके हाथ में आती है वही मदान्ध होकर बेईमान, दुश्चरित्र और बदनीयत हो जाता है।"[5] परन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए, व्यक्ति को अपनी सत्ता और शक्ति का दम्भ कदापि नहीं होना चाहिए वरन् वह मानते हैं कि 'जो कुछ जैसा है उसे वैसा स्वीकार करके उससे लड़ो, उसको बदलो। बाकी होगा वही जो भगवान का विधान है। हाँ, अपना कर्तव्य हमें करते जाना है।"[6]भगवान की इच्छा के विरुद्ध, प्रकृति की अवहेलना करके जो कार्य किया जायेगा उसमें ही व्यक्ति को असफलता मिलेगी।

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 131
2- वही- पृ० 319
3- वही- पृ० 71
4- वही- पृ० 68
5- वही- पृ० 74
6- वही- पृ० 74

ईश्वर और नियति के प्रति नाहरसिंह की अटूट श्रद्धा है, जिसे उन्होंने बार-बार दोहराया है और इसी आस्था के कारण वह समुनपुर का विकास करने का दम्भ करनेवाले व्यक्तियों को बार-बार चेतावनी देते हैं। परन्तु ईश्वर के विधान को ही सर्वस्त्र माननेवाले नाहरसिंह न अकर्मण्य हैं और न ही रूढ़िवादी। उनका समस्त जीवन-दर्शन वर्मा जी की जीवन-दृष्टि का परिचायक है, वह व्यावहारिक और यथार्थवादी धरातल पर निर्मित जीवन-दर्शन है। वह स्वयं राजवंशी होने पर भी जमींदारी और सामंतशाही व्यवस्था के प्रति, उसकी निष्क्रियता और विलासिता के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हैं -" हम राजवंश वालों ने जिस प्रकार वैभव एकत्रित किया, हमने जो -जो अन्याय और अत्याचार किये, हमने जिस पाशविकता को अपनाया, इतिहास उसका साक्षी है"[1] तथा "जमींदार को मिटना ही था, क्योंकि वह निकम्मा हो गया था, ऐश-आराम में डूबकर उसने अपने को तबाह कर लिया था।"[2] किन्तु वह शक्ति के सिद्धान्त को, ऊँच-नीच के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं करते और मानते हैं कि वर्तमान सरकार ने जमींदारी को मिटाकर जिस नयी व्यवस्था का निर्माण किया है, वह भी दोष-रहित नहीं है और उसकी पूँजीवादी व्यवस्था में शोषण का रूप अधिक भयंकर हो गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाहरसिंह में राजवंश का गौरव, स्वाभिमान, ममता, स्पष्ट-वादिता, अनुभव की तीक्ष्णता और कर्मशीलता का जो विचित्र समन्वय उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है, वह उनके व्यक्तित्व को अविस्मरणीय बना देता है।

'सामर्थ्य और सीमा' के चरित्र-चित्रण की पद्धति में कोई नवीन विशेषता नहीं है, किन्तु वर्मा जी ने पात्रों को इतनी सहृदयता और उदारता से अंकित किया है कि इस उपन्यास के पात्र अधिकांशत: वर्ग-प्रतिनिधि होकर भी प्रशंसनीय बन गये हैं। एक आलोचक ने लिखा है - "उन्होंने हर व्यक्ति के चरित्र का ऐसा सहृदयतापूर्ण मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है कि उसकी दुर्बलता एवं धृष्टता भी हमें अत्यंत मानवीय और क्षमायोग्य लगती है।----सशक्त चरित्रों से भरे और मन प्राण को झकझोर कर रख देनेवाला यह उपन्यास श्री भगवतीचरण वर्मा के साहित्य-सामर्थ्य का ओजपूर्ण परिचय देता है।"[3]

<u>रेखा</u> :- रेखा काम समस्या पर आधारित एक चरित्र प्रधान उपन्यास है और रेखा उसकी

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० ७०७ 74

2- वही- पृ० 209

3- आधुनिक हिन्दी उपन्यास :उद्भव और विकास- डा० बेचन-पृ० 165

नायिका है । रेखा ही सम्पूर्ण उपन्यास की मेरुदण्ड है । उसे उपन्यासकार ने इतने मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है कि वह 'चित्रलेखा' की ही भाँति हिन्दी साहित्य का एक अमर पात्र बन गयी है । एक प्रकार से वर्मा जी ने चित्रलेखा की तमाम विशेषताओं को लेकर और उसका आधुनिकीकरण करके रेखा के रूप में पुनः प्रस्तुत किया है और इस बार उन्हें चरित्र-चित्रण के शिल्प की दृष्टि से अधिक सफलता मिली ।

रेखा एक प्रतिभाशाली, बुद्धिमती और रूपगर्विता रमणी है और लोगों पर अपनी रूप-माधुरी का जादू चलाने में उसे सुख मिलता है, किन्तु प्रोफेसर प्रभाशंकर की विश्वविख्यात विद्वता और उनके व्यक्तित्व की गरिमा उसके गर्व को चकनाचूर कर देती है । दूसरों को आकृति माननेवाली रेखा प्रभाशंकर के सम्मुख केवल आकृति ही नहीं 'नाम' बनकर रह जाती है और उसका नारी-मन इस उपेक्षा को सहन नहीं कर पाता । वह प्रभाशंकर को अपने सम्मुख झुकाने के लिए लालायित हो उठती है । कुछ ऐसी स्थितियाँ आती हैं कि उसे इस कार्य में सफलता मिलती है और प्रौढ़ एवं विधुर प्रोफेसर से उसका विवाह हो जाता है । रेखा प्रभाशंकर से अत्यधिक प्रेम करती है और उनके प्रति उसके मन में अपार श्रद्धा है । प्रोफेसर से विवाह करके वह आनन्द-विभोर हो उठती है किन्तु उसकी यही खुशी बहुत दिन तक नहीं रह पाती । प्रोफेसर के अवैध पुत्र रामशंकर को देख उसमें काम-कुण्ठा का प्रादुर्भाव होता है, उसे प्रथम बार अनुभव होता है कि प्रभाशंकर का यौवन उन्हें छोड़ चुका है और उनमें 'बासी यौवन की सड़ाँध' शेष रह गयी है । उसका मन इस विचार से काँप तो उठता है किन्तु शारीरिक क्षुधा उसे बार-बार इस प्रश्न पर विचार करने के लिए विवश कर देती है कि 'आत्मा से पृथक् शरीर का भी क्या कोई अस्तित्व है ?"[1] उसकी आत्मा प्रभाशंकर से जुड़ी रहना चाहती है और नहीं चाहती कि उसके और प्रभाशंकर के बीच कोई दूसरा व्यक्ति आए, किन्तु रेखा को बहुत शीघ्र यह अनुभव होने लगता है कि आत्मा से पृथक् शरीर का अस्तित्व है । इसी भावना के वशीभूत होकर वह अपना शरीर अपने भाई के मित्र सोमेश्वर को सौंप देती है । सोमेश्वर द्वारा अपने शरीर की पवित्रता भंग किए जाने पर उसकी आत्मा उसे धिक्कारने लगती है, वह रो पड़ती है -"यह क्या कर डाला उसने ! उसकी सारी पवित्रता नष्ट हो गयी, उसने अपने देवता, अपने आराध्य के साथ कितना बड़ा विश्वासघात कर डाला !"[2] उसके मन में भयानक अन्तर्द्वन्द्व उठ पड़ता है । एक बार वह सोचती है कि उसने जो गलती की है उसके लिए प्रोफेसर से क्षमा-याचना करके पाप-मुक्त हो जाए किन्तु उसकी भावना पर बुद्धि विजय पा लेती है । वह तर्क

1- रेखा- पृ० 83

2- वही- पृ० 110

प्रस्तुत करती है कि उसके इस कुकृत्य से प्रोफेसर को कितनी ठेस पहुँचेगी, कितनी पीड़ा होगी और इस प्रकार प्रोफेसर को पीड़ा न पहुँचाने का बहाना ढूँढकर चुप रह जाती है। रामशंकर को देख कामकुण्ठा उत्पन्न होने से लेकर सोमेश्वर से शारीरिक सम्पर्क होने तक और तत्पश्चात् रेखा के अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति का बड़ा सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक चित्रण उपन्यासकार ने किया है। एक बार पर-पुरुष से अपने शारीरिक सम्बंध की बात छिपाकर रेखा दुस्साहसी हो जाती है और बार-बार अनेक पुरुषों से वह अपनी काम-क्षुधा शांत करती है, परन्तु प्रत्येक बार उसे अपने कुकृत्य पर पश्चाताप होता है। प्रोफेसर से उसका आत्मिक लगाव बना ही रहता है। विक्षिप्त सोमेश्वर के गर्भ को नष्ट करवाने के पीछे उसका प्रोफेसर के प्रति अगाध स्नेह ही कारण बनता है। वह सोचती है - "कितना बड़ा विश्वासघात हो गया है उससे प्रभाशंकर के प्रति ! डाक्टर प्रभाशंकर का पुत्र कहलाने वाला रेखा के अन्दर सोमेश्वर का प्रतिरूप पागल होगा, निर्बुद्ध होगा, वह प्रभाशंकर के नाम को कलंकित करेगा।"[1] वह प्रोफेसर की ख्याति को किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं करना चाहती और न ही उनके प्रति किसी के अशिष्ट व्यवहार को वह सहन कर पाती है। इसीलिए जब प्रभाशंकर निरंजन कपूर के साथ उसकी घनिष्ठता का पता लग जाने पर उसे मार बैठते हैं और रेखा को मारते व गाली देते देख निरंजन प्रभाशंकर को मारने बढ़ता है तो रेखा उसे धक्का देकर चिल्ला पड़ती है - "निकलो यहाँ से ! खबरदार, जो प्रोफेसर पर हाथ उठाया। मैं तुम्हारी जान ले लूँगी। निकलो !"[2]

एक योगेन्द्रनाथ मिश्र ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनसे रेखा का सम्बंध आत्मा और शरीर दोनों ही स्तर पर समान उत्कटता से स्थापित हो जाता है और रेखा प्रथम बार एक संघर्ष और विद्रोह की भावना का अनुभव करती है। योगेन्द्रनाथ से सम्बंध होने पर उसे प्रभाशंकर में तमाम दुर्बलताएँ और बुराइयाँ दिखने लगती हैं और उसे प्रभाशंकर का कटु व्यवहार असह्य प्रतीत होने लगता है। इतना होने पर भी वह प्रभाशंकर का परित्याग करने में असमर्थता का अनुभव करती है। वह योगेन्द्रनाथ से कहती है - "नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है ? प्रोफेसर को इस हालत में छोड़कर मैं नहीं जा सकूँगी। मेरे माता-पिता, मेरे परिवार वाले मुझसे घृणा करेंगे। मैं स्वयं अपने से घृणा करने लगूँगी शायद।[3]----- इस बीमार और मौत के मुँह में पड़े आदमी को छोड़कर मैं नहीं आ सकूँगी। इसको मैंने अपनी इच्छा से वरण किया है,

---

1- रेखा- पृ० 134

2- वही- पृ० 181

3- वही- पृ० 340

अन्त तक इस आदमी का साथ निभाना होगा मुझे ।"[1]

रेखा की यह द्वंद्वात्मक स्थिति इसलिए है कि उसमें भावुकता और बौद्धिकता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई है। अपनी भावना के कारण वह प्रभाशंकर के प्रति ममतावान् और दयालु बनी रहती है, उनकी मार-डाँट और गालियाँ सहन करके भी उनकी सेवा करती है। दूसरी ओर उसकी बुद्धि पर-पुरुषों से सम्बंध स्थापित करने के लिए तर्क ढूँढ लाती है। भावना और बुद्धि के भयंकर संघर्ष के ही कारण वह अंत में पागल हो जाती है।

'रेखा' कामकुंठा से ग्रस्त एक युवती है। उसकी मनोग्रंथि का बड़ा ही सफल चित्रण उपन्यासकार ने किया है। रेखा भारतीय संस्कारों के आग्रह के कारण पाठकों और आलोचकों की समुचित सहानुभूति भले ही न पा सके, परन्तु उपन्यासकार ने अनमेल विवाह से उत्पन्न जिस यौन-समस्या को रेखा के माध्यम से प्रस्तुत किया है, उसके चित्रण में उसे पूर्ण सफलता मिली है और उसका एकमात्र श्रेय रेखा के मनोवैज्ञानिक चित्रण को जाता है। रेखा एक मनोवैज्ञानिक केस है और उसका समुचित निर्वाह उपन्यासकार ने किया है।

<u>जगतप्रकाश :-</u> 'सीधी सच्ची बातें' का नायक जगतप्रकाश है। स्वतंत्रता-संग्राम के अंतिम वर्षों में भारतीय युवक की जटिल मन:स्थिति का चित्रण जगतप्रकाश के माध्यम से हुआ है। भारतीय राजनीति और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में एक व्यक्ति के अनुभव एवं तज्जनित कुंठाओं का चित्रण 'सीधी सच्ची बातें' में हुआ है।

जगतप्रकाश एक निम्न मध्यवर्ग का युवक है जो अपने अध्ययन के सहारे जीवन में बहुत ऊपर उठना चाहता है, किन्तु उसके जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं कि वह अपने लक्ष्य से भटककर बिल्कुल विपरीत दिशा में पहुँच जाता है। राजनीति में उसकी तनिक भी रुचि नहीं थी, किन्तु राजनीति उसके जीवन का अभिन्न अंग बन जाती है। वह कोई नेता नहीं बनता और न ही कोई सक्रिय कार्यकर्ता, फिर भी उसका समस्त चिन्तन और जीवन-दर्शन देश-विदेश की राजनीति से पूर्णरूपेण प्रभावित दिखता है। स्वतंत्रता-संग्राम के सर्वाधिक उथल-पुथल के वर्षों में यह असंभव भी था कि कोई सुशिक्षित और चेतन युवक राजनीतिक चिन्तन-मनन से स्वयं को दूर रख सके और जगतप्रकाश भी उससे अछूता नहीं रह पाता। कांग्रेस, गाँधी जी और उनकी अहिंसा पर विश्वास करनेवाला जगतप्रकाश जसवन्त, कुलसुम और जमील अहमद के सम्पर्क में

1- रेखा- पृ० 348

आकर साम्यवाद को ही अपना सिद्धान्त मान बैठता है । जसवन्त और कुलसुम की तरह साम्यवाद उसके लिए केवल फैशन और शौक की बात न रहकर सर्वाधिक उपयोगी जीवन-दर्शन बन जाता है । वह पग-पग पर अनुभव करता है कि गाँधी जी की अहिंसा एक बड़ा आकर्षक प्रयोग है और उसे दुनिया बड़े गौर से देख रही है, किन्तु अहिंसा वैयक्तिक गुण है । गाँधी जी उसे समाज पर, पूरे देश की जनता पर आरोपित करना चाहते हैं और यह असंभव है । इसीलिए गाँधी जी के 'करो या मरो' के नारे से देश में हिंसा की एक लहर दौड़ जाती है । वह देखता है कि गाँधी जी के अनुयायी स्वार्थ-साधन में दत्तचित्त हैं और समुचित नेतृत्व के अभाव में गाँधी जी का आन्दोलन प्रभावहीन होता जाता है । देश की ऐसी संशय और घुटन भरी राजनीति से वह घबड़ा उठता है । वह उसको यह विश्वास हो जाता है कि विश्व को शांति और समता की ओर ले जाने की क्षमता केवल साम्यवादी विचारधारा में ही है । वह रूस की सहायता करने के उद्देश्य से स्वयं एक सैनिक बनकर युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ता है, किन्तु इसमें उसे अपनी वैयक्तिक दुर्बलता के कारण सफलता नहीं मिल पाती । जगतप्रकाश एक भावुक, सरल हृदय और ईमानदार व्यक्ति है, अतः युद्ध-क्षेत्र में एक जर्मन सैनिक को अपना गोली से मरा देख उसका मन अशांति से भर उठता है । इस घटना का उसके ऊपर इतना अधिक असर होता है कि वह नर्वस ब्रेक डाउन का शिकार हो जाता है और वह व्याधि उसे बार-बार पीड़ित करने लगती है । अपनी सहृदयता के कारण ही वह बंगाल के अकालपीड़ित क्षेत्रों में सहायता के लिए जाकर भी व असहाय होकर लौट आता है । और अंत में अतिशय के०क० भावुकता के कारण ही गाँधी जी की हत्या की घटना सुनकर उसकी मृत्यु हो जाती है ।

यह भावुकता और सच्चाई उसे प्रेम के क्षेत्र में भी पीड़ित करती है । वह कुलसुम, यमुना, सुषमा और मालती सबकी भावनाओं को सत्य मान बैठता है । अपनी सच्चाई और स्नेहिल स्वभाव के कारण वह इन सबका विश्वास, सौहार्द्र और स्नेह तो प्राप्त करता है, किन्तु प्रत्येक से उसे निराशा ही मिलती है । हर बार वह किसी एक से जुड़कर अपने जीवन की कमी पूरी करना चाहता है, किन्तु ये सभी युवतियाँ उसके जीवन में काम-कुंठा उत्पन्न करके अलग हो जाती हैं ।

वर्मा जी ने एक मध्यवर्गीय युवक की तमाम विशेषताओं को जगतप्रकाश में समाविष्ट कर दिया है । उसमें एक हीन-भावना सर्वत्र दीखती है, इसी कारण न वह अपने विचारों पर दृढ़ रह पाता है, न अपने तिरस्कार और अपमान का प्रतिवाद कर पाता है और न ही किसी पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर पाता है । जब जसवन्त उससे कहता है -'और तुम कुलसुम के हाथ में एक खिलौना बनकर आए हो ।' तो वह भड़क उठता है -'तुम मेरा अपमान कर रहे हो,

जसवन्त कपूर ।' और जसवन्त को स्वीकार करना पड़ता है -'शाबाश । मेरी धारणा बदल गयी है - तुम खिलौना नहीं बनोगे ।'[1] किन्तु यह संवाद जगतप्रकाश और कुलसुम के सम्बंधों को देखते हुए निरर्थक प्रतीत होता है । जगतप्रकाश एक-दो बार तो कुलसुम द्वारा दी जानेवाली आर्थिक सहायता का विरोध करता है, तदुपरांत वह पूर्णरूपेण कुलसुम का आश्रित बनकर रह जाता है और कुलसुम के आँखों के इशारे पर नाचता दिखता है । वह कुलसुम के विरुद्ध अपनी प्रतिक्रिया पर बहुत देर टिका नहीं रह पाता । केवल एक बार शराब के नशे में वह कुलसुम की सहानुभूति का उत्तर कठोरता से दे पाता है ।[2] उपन्यास के अन्तिम पृष्ठों में तो वह कुलसुम से अत्यधिक अभिभूत दिखता है । वह कहता है -'मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा है कुलसुम, जैसे जीवन की गति पर अब मेरा कोई अधिकार नहीं रह गया है । तुम्हारी भावना और तुम्हारे विश्वासों की रक्षा कर सकूँ - भगवान मुझे इतना बल दें ।'[3] जगतप्रकाश से अधिक स्वाभिमान तो जमील (जो निम्नवर्ग का है) में दिखता है । वह कहता है 'माफ करना, अब जैसे कुलसुम की यह नेकी और दानशीलता अखरने लगी है, इस दान-खैरात से मुझे नफरत होने लगी है ।'[4] जगतप्रकाश दूसरों का विरोध न कर पाने के कारण अन्दर-ही अन्दर टूटता जाता है, घुलता जाता है और उसकी इस टूटन और घुटन को उपन्यासकार ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है । उसके मानसिक द्वन्द्व एवं हृदयान्दोलन का वर्मा जी ने सफल अंकन किया है ।'सीधी सच्ची बातें' में पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया , कथोपकथन और उपन्यासकार की टिप्पणी के द्वारा तो चरित्रांकन हुआ ही है, पात्रों के मानसिक द्वन्द्व को अधिक स्थिरता एवं कुशलता से ~~विष~~ चित्रित किया गया है, विशेषकर जगतप्रकाश के मनोजगत् के उद्वेलन को उसने विस्तार से चित्रित किया है ।

जगतप्रकाश सुन्दर, मेधावी एवं प्रतिभाशाली युवक है और उसमें सच्चाई, ईमानदारी और सहृदयता के सर्वोच्च गुण विद्यमान हैं। इन सब विशेषताओं का प्रभाव अंत तक उसकी कुछ दुर्बलताओं के उपरांत भी बना रहता है । यह उपन्यासकार की सफलता है । जगतप्रकाश स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में विद्यमान भारतीय नवयुवक का पूर्णरूपेण प्रतीक तो नहीं है, फिर भी तत्कालीन स्थिति में रहते हुए नवयुवक की चेतना के महत्वपूर्ण अंश का प्रतिनिधित्व

1-	सीधी सच्ची बातें-	पृ0 148
2-	वही-	पृ0 415
3-	वही-	पृ0 557
4-	वही-	पृ0 256

अवश्य करता है। एक समीक्षक ने उचित ही लिखा है -"इस उपन्यास का वास्तविक रूप महत्व स्वातंत्र्य-संघर्ष के दिनों में निम्न मध्यमवर्गीय युवक मन के आकलन में है, जो कि जितना ही अनायास है, उतना ही महत्वपूर्ण है।"[1]

<u>जबरसिंह :-</u> 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में एक पूँजीपति, एक नेता और एक भावुक नवयुवक की कथा के माध्यम से स्वातंत्र्य-पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन को समेटने का प्रयास किया गया है। उपन्यास व्यंग्यप्रधान है और उसमें उच्च स्तर पर चल रही अनीतियों एवं धोखाधड़ी की ओर कटाक्ष करना प्रमुख उद्देश्य है किन्तु इस उपन्यास में चरित्र-चित्रण का भी उत्तम प्रयोग बन गया है। इसमें मनोजगत् का विश्लेषण कहीं भी नहीं है, किन्तु स्थूल-चित्रण एवं पात्रों के कथोपकथन के द्वारा ही पात्रों के चरित्र के विभिन्न पक्ष उभरते चले गये हैं, उनके मनोभावों का प्रतीकात्मक रीति से अंकन हो गया है। उपर्युक्त तीनों पात्रों की तीन-तीन पीढ़ी के वृतांत दिये जाने के कारण उनका पैतृक संस्कारजनित एवं वैयक्तिक चरित्र बड़ा ही रोचक एवं विश्वास्य बन पड़ा है। जबरसिंह के बाबा नाहरसिंह एक डाकू और दादी एक बेड़िन थी। फलस्वरूप जबरसिंह को साहस, दृढ़ता और निर्भीकता परम्परागत संस्कारों के रूप प्राप्त हुए थे। इनके साथ-साथ बचपन से ही जबरसिंह में उद्दण्डता, लूट-खसोट और हठवादिता के वैयक्तिक गुणों का विकास होने लगा था। ये गुण, बल्कि इन्हें अवगुण ही कहना अधिक समीचीन है, जबरसिंह के परवर्ती जीवन में कुछ परिष्कृत रूप में दृष्टिगत होते हैं। जबरसिंह में अपनी माँ के गुण भी विद्यमान हैं- वह तीक्ष्ण बुद्धि, प्रतिभाशाली और हँसमुख बालक है। कालान्तर में उसकी बुद्धि और प्रतिभा तो बनी रहती है किन्तु उसकी विनम्रता कूटनीतिकता का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार वर्मा जी ने जबरसिंह के पैतृक-संस्कारों एवं बचपन के स्वभाव का उत्तरोत्तर विकसित रूप ही मंत्री जबरसिंह में दिखलाया है। यहाँ तक कि स्वातंत्र्य-पूर्व नेताओं की महत्वपूर्ण विशेषता का पूर्वाभ्यास भी वर्मा जी ने जबरसिंह द्वारा बचपन में ही करवा दिया है।[2] नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष के चुनाव में गौतम जी के मार्ग से चौरसिया जी को हटाने के लिए जबरसिंह जो चाल खेलता है वह उसकी तीक्ष्ण बुद्धि और निर्भीकता की परिचायक है। वह चौरसिया जी को भाँग पिलाकर एक अज्ञात कोठरी में बंद कर देता है और चौरसिया जी की अनुपस्थिति में गौतम जी सर्वसम्मति से नगराध्यक्ष चुन लिए जाते हैं। जब चौरसिया जी का नशा उतरता है और वह बाहर निकलते हैं, तो जबरसिंह पर क्रुद्ध होकर धमकी देने लगते हैं।

1- प्रकाशन समाचार, स्वातंत्र्य संघर्ष के दिनों में युवक मन का दर्पण- ले० डॉ० ओंकारनाथ श्रीवास्तव, अप्रैल, 1969, पृ० 25

2- सबहिं नचावत राम गोसाईं-पृ० 80

इस पर जबरसिंह, जिसने अभी तक कांग्रेसमैनों पर अपने सेवाभावी, विनम्र और हँसमुख होने का प्रभाव डाल रखा था, एकाएक तन जाता है। जबरसिंह कठोर एवं कुरूप मुद्रा में कहता है - "देख बे चौरसिया के बच्चे, अगर तूने मेरे साथ चूँ-चपड़ की तो तेरी लाश ढूँढे नहीं मिलेगी। हमारा नाम जबरसिंह-इतना याद रखना।"[1] और सच ही जबरसिंह की जबरई उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इस घटना के बाद से ही उसका राजनीतिक जीवन प्रारम्भ हो जाता है। वह बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन में ए०आई०सी०सी० के सदस्य के रूप में भाग लेने जाता है। वहाँ से लौटने पर गाँधी जी के 'करो या मरो' के नारे का उपयोग रेल की पटरियाँ उखाड़ने में करता है और उसे सात साल कीसजा मिल जाती है। इस प्रकार वह उद्दण्ड और निडर युवक पूर्णरूपेण नेता बन जाता है। राजा गम्भीरसिंह के विरुद्ध चुनाव लड़ते समय तो उसमें वर्तमान नेताओं के सभी गुण दिखते हैं। उनका बड़ा सटीक चित्रण वर्मा जी किया है। सदाशिव गौतम द्वारा यह पूछे जाने पर कि 'क्या वह राजा गम्भीरसिंह का मुकाबला कर सकेगा?' जबरसिंह तनकर उत्तर देता है -"मुकाबला तो हम यमराज का कर सकते हैं, आदमी की क्या बिसात है। लेकिन पहले बड़े-बड़े लोगों से पूछ लिया जाय। हम तो कांग्रेस के सेवक है - महात्मा गाँधी के तुच्छ सिपाही हैं। आप लोगों का जैसा हुक्म होगा वैसा करेंगे।" तदुपरांत जबरसिंह के धुँआधार व्याख्यान और डाकुओं के समक्ष सीना खोलकर खड़े हो जाने तथा उन्हें भाषण द्वारा अपना भक्त बना लेने की घटनाओं की चर्चा करके उपन्यासकार ने जबरसिंह के न नेतारूप का क्रमिक विकास विकास दिखलाया है।[2] जबरसिंह के उपर्युक्त कथन से उसका साहस और कूटनीतिज्ञता स्पष्ट झलक उठती है, इन्हीं के सहारे वह सदाशिव गौतम, जिनके कारण उसे राजनीति में प्रवेश मिला, को पराजित कर उनके स्थान पर स्वयं मंत्री बन जाता है। इतना ही नहीं, वह मुख्यमंत्री त्यागमूर्ति जी को भी अपने धौंस-बट्टे से ठीक किए रहता है और अपना काम निकालता रहता है।[3] इसी साहस और धौंस-बट्टे के बल पर वह अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों को पीछे छोड़ता हुआ आगे बढ़ता जाता है और एक दिन गृहमंत्री बन जाता है। जबरसिंह अगर किसी से डरता है, तो केवल अपनी पत्नी धनवंतकुँवर से। पत्नी से दबने का एक विशेष कारण था -"राज-परिवार की लड़की, फिर उनकी भाग्यलक्ष्मी। यही नहीं, धनवंतकुँवर के मुख पर एक प्रकार का तेज था- उसकी निष्ठा का, विद्वता का और धर्मपरायणता का, जिसके आगे

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 88

2- वही- पृ० 90

3- वही- पृ० 154

जबरसिंह सहम जाते थे।"[1] इसके अतिरिक्त एक और कारण था। जबरसिंह की अर्थ-लोलुपता और पद-लोलुपता पर कटु प्रहार केवल धनवंतकुँवर कर पाती थी और जबरसिंह सत्याभास से मर्माहत-से रह जाता था।

जबरसिंह का बाहरी और भीतरी व्यक्तित्व नितांत भिन्न है। ऊपर से वह जनता, समाज और देश का सेवक बनने का ढोंग रचाये है और अन्दर-ही-अन्दर अनीतियों और भ्रष्टाचारिता को बढ़ावा देता जाता है। उसका केवल एक आदर्श है -"अब आदर्शवाद एक नारा भर रह गया है, असली चीज है अपनी सत्ता की रक्षा, और सत्ता की रक्षा केवल पैसे के बल पर ही हो सकती है।"[2] यह पैसा उसे एकधिश्वकप पूँजीपति राधेश्याम से मिलता है और इस बदले में वह राधेश्याम को अपने पद का लाभ दिलवाता है। अपने चुनावों के लिए वह पैसा राधेश्याम से लेता है, अपनी कोठी बनवाता है, विभिन्न रीतियों से घूस लेता है और राधेश्याम की हर सम्भव सहायता करता है।

जबरसिंह की कूय कूटनीतिक चालों का बहुत सुन्दर चित्रण वर्मा जी ने किया है। वह कांग्रेस के लिए चन्दे और वोटों को कितनी कुशलता से प्राप्त करता है, द्रष्टव्य है। शहर के व्यापारियों से निपटते हुए वह कहता है -"यह शहर कोतवाल बदल दिया जाय, यह सुपरिन्टेन्डेन्ट बदल दिया जाय, यह मिनिस्टर बदल दिया जाय- यानी हुकूमत आपकी मर्जी के मुताबिक चले। जाइये-अगर ये बेगुनाह हैं तो अदालत उन्हें छोड़ देगी और अगर यह गुनहगार हैं तो सजा भुगतें।"[3] इस धमकी से व्यापारियों को पसीजते देख वह सजा से बचने का उपाय सुझा देता है -"तो पार्टी के आफ़िस में पचास हज़ार रुपया भिजवाओ - दो दिन के अन्दर। मैं अभी तुम्हारे आदमियों को रिहा कर देता हूँ।"[4] इसी प्रकार मुस्लिम नेताओं से वोट दिये जाने का वादा लेकर वह कहता है -"अच्छी बात है, मौक़े पर वादे से मुकर न जाइयेगा। कल तक आपके सब लीडरान रिहा हो जाएँगे। आप सब लोग मेल मुरव्वत से रहिए, हमारी पार्टी के हाथ मजबूत कीजिये। हमीं आपकी माइनारिटी की रक्षा कर रहे वरना आप लोग नेस्तनाबूद हो जाएँगे।"[5] किन्तु समाज में 'मेल-मुरव्वत' रखना, शांति बनाए

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 96
2- वही- पृ० 97
3- वही- पृ० 171
4- वही- पृ० 171
5- वही- पृ० 173

रखना उसे हृदय से अभीष्ट नहीं, समस्याओं को बनाए रखने में ही उसका एवं उसके कर्मचारियों का अस्तित्व कायम रह सकता है - इसी ओर इंगित करते हुए वह रामलोचन से कहता है-"आज शिया-सुन्नियों का एक संयुक्त डेलीगेशन आया था । बड़ी जल्दी सुलह करा दी तुमने इन लोगों में, न कहीं कोई दंगा हुआ, न कोई मारा गया और न कोई आगज़नी हुई । तो लगता है इन लोगों की गिरफ़्तारी में तुमने कुछ जल्दी कर दी । कुछ-न-कुछ तो हो ही जाना चाहिये था। --- अपराधों के अनुपात से ही तो पुलिस फोर्स बढ़ाया जाता है । अब यह देखो कि साम्प्रदायिक दंगों की आशंका नहीं, स्मगलिंग कम होगी, ब्लैकमार्केटिंग बन्द- लॉ एण्ड आर्डर पोजीशन बिल्कुल ठीक । तो फिर तुम में पुलिसवालों की ज़रूरत क्या है ? ---नहीं रामलोचन इन गुण्डों को बन्द रखने से कोई फायदा नहीं ।"[1]

राजनीति में उठा-पटक, दाँव-पेंच सौदेबाजी एवं धोखाधड़ी अत्यंत आवश्यक है । जो जितना छलछन्द कर सकता है, वह उतना ही सफल होता है - जबरसिंह इस तथ्य का प्रतीक है । इसके अतिरिक्त आरोप-प्रत्यारोप और भाई-भतीजावाद भी राजनीति के महत्वपूर्ण अंग बन गये हैं । जबरसिंह के साथ त्यागमूर्ति और हिम्मतसिंह की कथा जोड़कर वर्मा जी ने भारतीय नेताओं में व्याप्त विकृतियों को अनावृत्त कर दिया है । इस प्रकार जबरसिंह अपने वर्ग का प्रतिनिधि एवं पूर्ण प्रतीक है । उसका एक-एक कथन सार्थक है और उसकी विशेषताओं का द्योतन करता है ।

<u>उदयराज उपाध्याय</u> :- 'सीधी सच्ची बातें' के अंत में जगतप्रकाश की मृत्यु के सम्बंध में डॉ० ओंकारनाथ श्रीवास्तव ने लिखा है -"सच पूछा जाये तो जगतप्रकाश की मृत्यु नहीं होती,वह उपन्यास को समाप्त करने का एक उपक्रम भर है । जगतप्रकाश आकस्मिक नहीं क्रमिक मृत्यु का भागी है, और जो उसकी मृत्यु बतायी गयी है, वह मृत्यु एक और झटका भर है । उसके आगे की कथा उस इतिहास में है जिसे हम जी रहे हैं ।"[2] यह कथन पूर्णतया सत्य है । 'सीधी सच्ची बातें' के बाद का इतिहास 'प्रश्न और मरीचिका' में वर्मा जी ने एक रोचक कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है, और इस उपन्यास का प्रस्तोता उदयराज उपाध्याय जगतप्रकाश का ही कुछ परिवर्तित रूप है । 'सीधी सच्ची बातें' में कथानक जगतप्रकाश के चारों ओर घूमता रहता है और 'प्रश्न और मरीचिका' में उदयराज ही आत्मकथा के रूप में उपन्यास प्रस्तुत करता है । 'सीधी सच्ची बातें' गाँधी जी की मृत्यु के उपरांत समाप्त होता है और 'प्रश्न और मरीचिका'

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 178

2- प्रकाशन समाचार,अप्रैल-1969,पृ० 25

गाँधी जी की मृत्यु से कुछ पूर्व से प्रारम्भ होता है। जगतप्रकाश स्वतंत्रता-पूर्व और स्वतंत्रता-प्राप्ति के दिनों के युवक-मन का प्रतीक है और उदयराज स्वातंत्र्योत्तर भारत के उच्चवर्गीय युवकों का प्रतिनिधि।

उदयराज के पिता जयराज उपाध्याय भारत सरकार के उच्च पदाधिकारी हैं। उन्होंने एक इटैलियन नर्तकी मारिया गियोवानी से विवाह किया था, और उदयराज उसी की संतान है। उदयराज जब पाँच वर्ष का था, तभी उनका मरिया से सम्बंध-विच्छेद हो जाता है और वह एक हिन्दू महिला से विवाह कर लेते हैं। मारिया के विदेश चले जाने पर वह उदयराज को एक बोर्डिंग हाउस में रख देते हैं। इस घटना के 15 वर्ष पश्चात् उदयराज बी० ए० पास करके अपने पिता के पास पहुँचता है और वहाँ उसका अनपेक्षित रूप से स्वागत होता है। रोमन नाक-नक्श और सुन्दर रूप-रंग के उदयराज का इतना अधिक प्रभाव उसके पिता के मित्रों पर पड़ता है कि वे सब उसे अपने-अपने व्यवसाय से जोड़ना चाहते हैं। अंतत: उदयराज एक पत्रकार बन जाता है। एक पत्रकार के नाते उदयराज को देश-विदेश में होनेवाली घटनाओं से परिचित होने का अवसर मिलता है। उदयराज को एक पत्रकार के रूप में प्रस्तुत करके वर्मा जी ने देश की राजनीतिक गतिविधियों का चित्रण करने का प्रशंसनीय उपाय निकाला है। उदयराज पत्रकार के रूप में इतनी प्रसिद्धि प्राप्त करता है कि उसे तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू का नैकट्य प्राप्त होता है और वह उनके साथ चीन की ऐतिहासिक यात्रा पर जाता है। पत्रकार होने के कारण ही उसे भारतीय राजनीति को नजदीक से सोचने समझने का अवसर मिलता है।

उदयराज भारत सरकार के एक सेक्रेटरी का पुत्र है और उसका विवाह भी एक सेक्रेटरी की पुत्री से होता है। अत: उसे उच्च-पदस्थ अधिकारियों के जीवन में विद्यमान विकृतियों एवं अनीतियों को देखने का अवसर भी मिलता है। इसी प्रकार अपने पिता की मित्रता के आधार पर और कुछ अपने निजी सम्बंधों के कारण उसके जीवन में व्यापारी, अफसर, नेता, उद्योगपति, सामाजिक कार्यकर्ता, फिल्मी कलाकार आदि अनेक उच्चवर्गीय लोग आते हैं। घनिष्ट सम्बंधों के कारण वह उनकी नितांत व्यक्तिगत दुर्बलताओं से परिचित होता है और उसे ऐसा अनुभव होता है कि स्वतंत्रता के पश्चात् जिस भाग्योदय की आशा भारतीय-जन ने की थी, वह एक मरीचिका मात्र बनकर रह गयी है। देश के हर क्षेत्र में व्याप्त विकृतियों और भ्रष्टाचारों के कारण देश के समक्ष अनेक समस्याएँ हैं, अनेक प्रश्न हैं। इस अनुभव के कारण उसका मन निराशा और विषाद से भर उठता है।

उदयराज उच्च वर्ग का एक नवयुवक है अत: उसे न पैसे की कमी है और न सम्मान की। इसीलिए उसमें जगतप्रकाश की भाँति कोई हीन-भावना नहीं है। घर-गृहस्थी एवं आर्थिक चिंताओं से मुक्त रहकर वह हर व्यक्ति की सहायता करता है, लोगों के प्रति उसमें अपार सद्भाव एवं सहानुभूति है। अपनी इस भावना से प्रेरित होकर वह अपने सम्पर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करता है और प्रत्येक व्यक्ति उसे अपना आत्मीय समझने लगता है। यहाँ तक कि कांता तो 'देवता' तक कह बैठती है।

उदयराज में साहस, परोपकार एवं सहृदयता के महान् गुणों के साथ-साथ कुछ दुर्बलताएँ भी विद्यमान हैं। माता-पिता की छत्र-छाया से दूर रहने के कारण वह अपनी तरुणावस्था में ही भोग-विलास का जीवन व्यतीत करने का आदी हो गया था। 'आवारा' लड़कियाँ उसके पीछे घूमती थीं तथा मदिरा-सेवन उसके लिए अनिवार्य हो गया था। उसकी यह भोग-विलास की वृत्ति दिल्ली में अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर बढ़ती ही जाती है। सर्वप्रथम वह मुस्लिम युवती सुरैया के प्रति आकर्षित होता है और उससे विवाह करना चाहता है, किन्तु साम्प्रदायिक कट्टरता के कारण उसका विवाह सुरैया से नहीं हो पाता। तदुपरांत उसका विवाह अद्वितीय सुन्दरी प्रमिला से हो जाता है। प्रमिला के रहते हुए भी वह बिन्देसरी देवी की वासना का शिकार बनता है। उसमें इतना चारित्रिक साहस नहीं कि वह उसका प्रतिकार कर सके, वरन् वह अपनी चारित्रिक दुर्बलता के कारण उस ओर खिंचता ही जाता है। इसी प्रकार सोफी गार्डनर से भी उसका प्र सम्बंध होता है। केसरबाई और रूपा शर्मा की ओर भी वह आकर्षित होता है किन्तु वे दोनों उसे अपने अभिशाप ग्रस्त जीवन से दूर रखकर नैतिकता का मार्ग दिखलाती हैं। उपर्युक्त स्त्रियों को उदयराज की ओर आकर्षक दिखलाकर वर्मा जी ने उच्च-वर्ग में व्याप्त काम-विकृतियों को अनावृत किया है।

उदयराज उच्च वर्ग के अधुनातन समाज में रहते हुए भी परम्परागत भारतीय संस्कारों से बद्ध युवक है। अपने पिता और विमाता के प्रति अपने दुराग्रहों के बावजूद भी वह उनका आदर करता है, उन्हें पर्याप्त सम्मान प्रदान करता है। पिता द्वारा यह पूछे जाने पर कि 'शायद सन्यास लेने की नौबत मुझे नहीं आएगी' उदयराज झुककर अपने पिता के पैर पकड़ लेता है और कहता है, -'ऐसी बात आप अपने मुँह से मत निकालिए।'[1] अपनी सौतेली बहन से उसे अगाध स्नेह है और बच्चों के प्रति ममता। आजकल उच्च वर्ग में क्लब, डिनर पार्टी आदि

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ0 482

की व्यस्तता के कारण परिवार की उपेक्षा करने की सामान्य प्रवृत्ति देखी जा सकती है, किन्तु उदयराज, इसके विपरीत अपने घर-परिवार में 'सुख से भरी शान्ति'[1] का अनुभव करता है। अपनी समस्त व्यस्तता के उपरांत उसके पास बच्चों को दुलारने का समय भी है। अपनी पत्नी के प्रति भी उसे हार्दिक प्रेम है। कुछ दिन के लिए बिन्देसरी की वासना का शिकार बनकर उसमें एक पागलपन अवश्य भर उठता है, किन्तु उस पागलपन से मुक्ति पाकर उसे अत्यधिक प्रसन्नता होती है। अपने भारतीय संस्कारों के कारण ही उसे यह प्रसन्नता होती है। अपनी पत्नी के सम्बंध में भी उसका दृष्टिकोण भारतीय संस्कारों से प्रभावित है। उसकी धारणा है कि "प्रमिला का स्थान घर के अन्दर है, घर के बाहर उसका कोई स्थान हो ही नहीं सकता।"[2] उपन्यास के प्रारम्भ में उसमें कुछ चारित्रिक दुर्बलता अवश्य दिखती है परन्तु कुछ प्रौढ़ता आने पर उसकी उपनैतिकता, उसकी पशुता मनुष्यता से पराजित होने लगती है। वह एक सच्चे पति के रूप में अपनी साख जमा लेता है। वह स्वयं तो ऊपर उठता ही है, काम-पीड़ित कांता को भी उचित मार्ग दिखलाता है। कांता द्वारा प्रणय-निवेदन किए जाने पर वह कहता है - "भाभी जी, आप किसी की नहीं हैं, आप अपनी हैं -सिर्फ अपनी। आप अपने परिवार की हैं, अपने समाज की हैं। अब बहुत रात हो गई है, आप सो जाइए जाकर दरवाज़ा बन्द करके। प्रमिला मेरा इन्तजार कर रही होगी।"[3] उदयराज के इस कथन से स्पष्ट है कि वह अपने समाज और परिवार की मर्यादा का पूरा ध्यान रखता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उदयराज एक सुन्दर, प्रतिभाशाली एवं आधुनिक युवक है। उसका वाह्य रूप पाश्चात्य सभ्यता से रंगा है, किन्तु अन्तस् भारतीय संस्कारों एवं मान्यताओं से निर्मित है। उदयराज के रूप में उपन्यासकार ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के उच्चवर्गीय युवक का चरित्रांकन किया है। चरित्र-चित्रण की प्रणाली में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। उदयराज के जीवन में पृथक्-पृथक स्थितियाँ आती हैं - उनसे प्रभावित क्रिया-प्रतिक्रिया में उसकी चारित्रिक विशेषताओं का अंकन होता गया है। प्रस्तुत उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है, इसलिए इसमें उदय का मनोजगत् स्वयमेव प्रकट होता गया है और उसके मस्तिष्क में चलने वाले चिन्तन का भी अंकन हो गया है। एक समीक्षक श्री मधुरेश का कथन सर्वथा असंगत प्रतीत होता है -"जाहिरा तौर पर यह प्रश्नों के समाधान का नहीं उनसे पलायन का तरीका

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 402

2- वही- पृ० 324

3- वही- पृ० 340

है और ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जीवन्त परिवेश से पात्रों को तराशने का--- कौशल लेखक के पास नहीं है ।[1] इस कथन से सहमत हो पाना कठिन है । स्वतंत्रता -प्राप्ति के पश्चात् (उपन्यास में चर्चित वर्षों में) जिस निराशा और अवसाद का अनुभव भारतीय-जन कर रहे हैं थे, उसका अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण भले ही वर्मा जी ने किया है, किन्तु वह नितांत असत्य कदापि नहीं है । और उनको भोगता हुआ उदयराज भी अयथार्थ और अस्वाभाविक नहीं है । जहाँ तक 'पात्रों को तराशने' के कौशल का प्रश्न है, उसमें वर्मा जी का अनाड़ीपन कहीं नहीं दिखता । कथा और राजनीतिक घटनाओं के समन्वय के बीच बड़ी स्वाभाविकता के साथ उदयराज का चरित्र उभरता गया है ।

वर्मा जी के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की विभिन्न प्रणालियों एवं कुछ प्रमुख पात्रों के विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि वर्मा जी और प्रेमचन्द के उपन्यासों के चरित्र-चरित्र में बहुत लम्बा फासला तो नहीं है, परन्तु वर्मा जी के उपन्यासों में चरित्रांकन की पद्धति में पर्याप्त प्रगति अवश्य हुई है । वर्मा जी चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासकारों और मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों (अज्ञेय, इलाचन्द जोशी और जैनेन्द्र) के मध्य अवस्थित हैं । वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में जहाँ पात्रों की वाह्य आकृति वेशभूषा और क्रिया-कलापों का चित्रण किया है, वहीं उनके अन्तर्मन को भी झाँकने का प्रयास किया है । पात्रों की अन्तर्वाह्य प्रेरणाओं का चित्रण करते हुए उनके औपन्यासिक जीवन का क्रमिक विकास दिखलाने की प्रवृत्ति ही वर्मा जी के उपन्यासों में अधिकांशत: परिलक्षित होती है । पात्रों के प्रथम दर्शन के समय या उसके कुछ देर बाद प्राय: उनका परिचय 'ब्लैक करैक्टराइजेशन' अर्थात् घनीभूत पिंडित् चरित्र -चित्रण की पद्धति से करवाया गया है, तत्पश्चात् विशिष्ट स्थितियों में उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया, अन्तर्द्वन्द्व , पात्रों के पारस्परिक कथोपकथन, उपन्यासकार की टिप्पणी आदि के द्वारा पात्रों के चरित्र के विभिन्न पक्ष उजागर किये गये हैं । चरित्र-चित्रण की यही प्रक्रिया वर्मा जी के उपन्यासों में थोड़े बहुत अन्तर से देखी जा सकती है, अर्थात् उपन्यास -रचना के लगभग 45 वर्षों में उनके चरित्र निर्माण की शैली में कोई उल्लेख्य अंतर नहीं आया है । उपन्यास की वस्तु के आधार पर कहीं पात्रों का अंतर्पक्ष अधिक प्रकट हुआ है, तो कहीं उनकी वाह्य गतिविधियों को अधिक प्रमुखता दी गयी है । इसी कारण वर्मा जी के उपन्यासों में मनोविज्ञान का समय-सापेक्ष्य रूप में प्रयोग हुआ है ।

1- देखिए -'समीक्षा' - उपन्यास -समीक्षा अंक, नवम्बर, 1973, पृ0 22

वर्मा जी के उपन्यासों में नारी और पुरुष पात्रों को समान भावना से प्रस्तुत किया गया है। ‘पतन’, ‘टेढ़े मेढ़े रास्ते’, ‘भूले बिसरे चित्र’, ‘सीधी सच्ची बातें’, और ‘सबहिं नचावत राम गोसाईं’ में पुरुष पात्रों के चरित्र विशिष्ट हैं तथा ‘सामर्थ्य और सीमा’, ‘रेखा’, ‘वह फिर नहीं आई’ और ‘चित्रलेखा’ के नारी-पात्र पुरुष-पात्रों पर अपना प्रभुत्व जमाए हुए हैं। इसी प्रकार उनके उपन्यासों में ‘व्यक्ति’ और ‘प्रतिनिधि’ भी समान-रूप से विद्यमान हैं। तथापि वर्मा जी के उपन्यासों में ऐसे पात्र प्राय: बहुत कम हैं, जो केवल ‘वर्ग-प्रतिनिधि’ ही हों, ऐसे पात्रों की संख्या ही अधिक है जिनमें वर्गगत विशेषताओं के साथ-साथ व्यक्तिगत विशेषताएँ भी आ गयी हैं। ‘व्यक्ति’ पात्र संख्या में अत्यल्प हैं।

वर्मा जी के चरित्र-चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने उपन्यास के प्रमुख और गौण पात्रों को समान सहानुभूति से अंकित किया है। उनके उपन्यासों के प्रमुख पात्र तो अपना अमिट प्रभाव पाठक पर डालते ही हैं, कुछ अति सामान्य एवं अल्पजीवी पात्र भी वर्मा जी के चरित्र-चित्रण की कुशलता के कारण अविस्मरणीय बन गये हैं। इसका एक मात्र कारण यह है वर्मा जी के उपन्यासों के पात्र कल्पना-जगत् के प्राणी न होकर वस्तु-जगत के मनुष्य हैं। उनमें क्षमता और दुर्बलता गुण और अवगुण का यथार्थानुरूप समन्वय दृष्टिगत होता है। वर्मा जी की चरित्र-निर्माण-क्षमता के कारण उनके उपन्यासों के पात्र स्वाभाविक, विश्वास्य एवं स्मरणीय बन पड़े हैं।